मूल्य रु० ६/-

ज्येष्ठ-आषाढ़ २०५८ जून २००१

स्वदेशी

राष्ट्रीय स्वाभिमान, आर्थिक स्वावलंबन, राष्ट्रीय पुनर्रचना तथा स्वदेशी संदेश की संवाहिका **पत्रिका**

एनरॉन के हाथों गिरवी है राष्ट्र की संप्रभुता

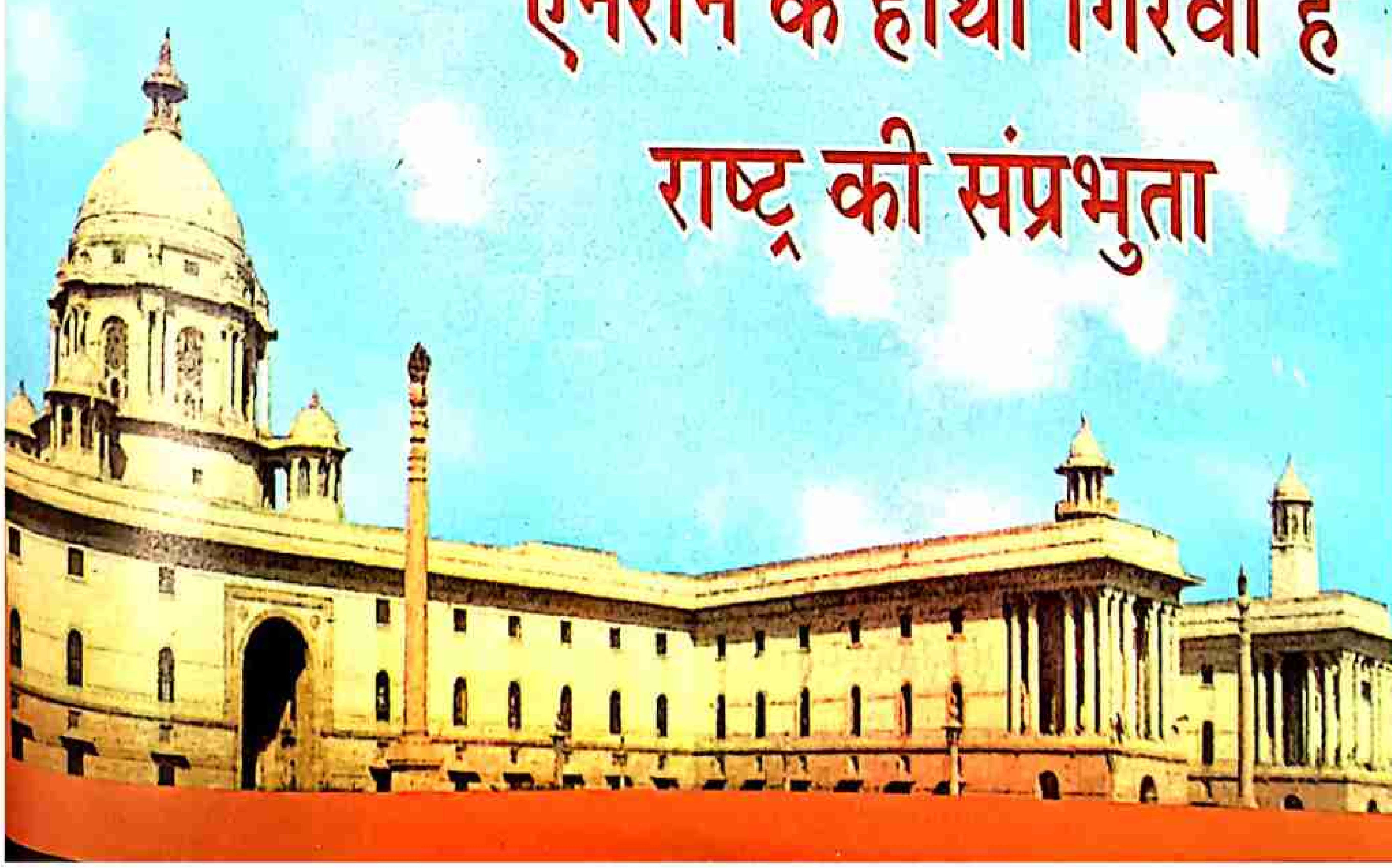

Scanned with OKEN Scanner

गिद्ध-गाथा

■ पारिजात

गिद्धों ने मना किया –
मत कहो, देश पर मड़राती
कंपनियों को गिद्ध,
गिद्ध-संतानें दुखती हैं

कंपनियाँ खाती हैं
जीवित प्राणियों-वनस्पतियों
और प्रकृति के अंगों को,
गिद्ध नहीं खाते कोई जीवित अस्तित्व,
कंपनियाँ जिन्दा को
करती है मुर्दा, और गिद्ध –

सड़ी-गली लाशों का खाकर
करता है वातावरण शुद्ध,
मत कहो देश पर मड़राती
कंपनियों को गिद्ध...
गिद्धों ने कहा –
उन्हीं के पुरखे थे जटायु
जो सीता माता की पुकार सुन
रावण पर टूट पड़े,
कंपनियों के पुरखे थे समुद्री लुटेरे
जो देश-देश लूट पड़े।
सोने की लंका में रहता था रावण वह –
बीते कल का,
पैसों के पहाड़ पर रहता है
कंपनियों का आका
आजकल का
दोनों की बैर पुरानी और
लड़ाई खानदानी है।
मत कहो, देशपर मड़राती
कंपनियों को गिद्ध....

फिर होगा युद्ध
जीवन चाहने वालों
और मृतक बनाने वालों के बीच
फिर नए रावण में बढ़ रही है जिद्द
फिर सबसे पहले
लड़ चुका होगा एक गिद्ध,
रावण के नाश का मंत्र
बताने के लिए बस
अंतिम साँस रोक
उसने बिछायी होगी आँखें
राम की राहो में
मत कहो –
देश पर मड़राती
कंपनियों को गिद्ध
जीवित को मृत बनाने वाली कंपनियाँ तो
बहुत ज्यादा है नीच।

Scanned with OKEN Scanner

अपनी वार्ता

प्रिय पाठक बन्धु,

राष्ट्र की संप्रभुत्ता को गिरवी रखवाने वाले उदारीकरण के रास्ते सरकारी विकास की नीतियाँ हमें कहाँ लेकर जा रही हैं – पराधीनता के गर्त में? इससे छुटकारा पाने के लिए एक और स्वतंत्रता की लड़ाई लड़नी होगी। स्वदेशी पत्रिका के इस अंक में अग्रलेख के रूप में दिया जा रहा पी.बी. सामंत के मूल मराठी लेख का संपादित एवं भाषान्तरित अंश इसी संदेश को आप पाठकों तक पहुँचाना चाहता है। वर्तमान समय की चुनौतियों से मुखर होती जा रही राष्ट्रीय चेतना के संवाद विभिन्न रूपों में नई स्वतंत्रता अर्थात् आर्थिक स्वतंत्रता को ही केंद्र बना रहे हैं। पत्रिका के अन्य लेख भी इसी स्वर के हैं – आशा है आपको अनुकूल लगेंगे।

नमस्कार।

आपका

प्रमोदकुमार दुबे

अनुक्रम

अग्रलेख

एनरॉन के हाथों गिरवी है राष्ट्र की संप्रभुता
पी.बी. सामंत............................/६

लेख

पेटेंट कानून : विकसित देशों का आधिपत्य
के.आर. नारायणन......................./१५

विश्व व्यापार संगठन के साथ हुए कृषि-अनुबंध पर भारत का प्रस्ताव
बाबा साहब तकवाले..................../१८

कितनी भयानक होगी यह आर्थिक मंदी
अवधेश कुमार....................../२०

सक्षम महिलाओं को कर्ता बनाना चाहिए
डॉ. भरत झुनझुनवाला................../२७

राष्ट्र की प्रगति में स्वदेशी तकनीकी और विकल्प
मुकुन्द कुमार सिंह..................../२९

संस्कृति

वैश्विक अर्थ-युद्ध में श्रीराम का आश्रय
डॉ. प्रमोदकुमार दुबे..................../३१

स्तंभ

पाठकनामा/४, उन्होंने कहा/४, समाधान/२६, घर-गृहस्थी/३४, माध्यम/३६, समाचार परिक्रमा/४६, हलचल/४७

संपादकीय कार्यालय : ६०, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली-११० ००१ ● दूरभाष : ३०१८७७५
ई-मेल : swadeshisampark@rediffmail.com

स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–६, अंक–९

ज्येष्ठ–आषाढ़ २०५८, जून, २००१

:: अमर वाणी ::

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया है, जिस जगदीश्वर ने दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, जैसे आकाश में सब लोक-लोकांतरों में पक्षी उड़ते हैं, वैसे ही वह सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक, कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

• • •

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

हे सब प्रजा के स्वामिन् परमात्मन् ! आपसे भिन्न कोई इन सब उत्पन्न हुए जड़, चेतनादिकों का तिरस्कार नहीं कर सकता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और इच्छा करें, वह-वह हमारी कामना सिद्ध होवे, जिससे हम लोग धनैश्वर्य के स्वामी हों।

(भक्ति दर्पण)

मुख्य संपादक :
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

कार्यकारी संपादक :
डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

मूल्य : एक अंक – ६ रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्क – ६० रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्क – १०००/-

विशेष सूचना : अपनी सदस्यता सूची एवं सदस्यता फार्म कृपया अपना नाम व पता, पिनकोड सहित साफ-साफ शब्दों में लिखकर भेजें।

Scanned with OKEN Scanner

पाठकनामा

अवश्यमभावी एक निःशस्त्र क्रांति

संपादक जी,

स्वदेशी पत्रिका को पढ़ने से धीरे-धीरे मेरे मन में भी ऐसी दृढ़ धारणा बनती जा रही है कि विदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण ही समाप्त होता जा रहा है। तथ्य परक लेखों और विचारों को दूसरे लोगों तक बातचीत के क्रम में पहुँचाने से मेरे प्रति लोगों की श्रद्धा क्रमशः बढ़ती जा रही है। इस मई के अंक में देवेन्द्र शर्मा जी के लेख को पढ़कर किसानों के प्रति चिंता बहुत बढ़ गई है – साथ ही सरकार की अदूरदर्शिता पर भयंकर निराशा हुई है।

माननीय दत्तोपंत ठेंगड़ी जी को राष्ट्रऋषि के रूप में संज्ञायित करना बहुत अच्छा लगा। लगता है – भारत के आम जनजीवन को कल्याण के लिए एक निःशस्त्र क्रांति अवश्यमभावी है।

– भास्करानन्द मिश्र
चकवेदौलिया, समस्तीपुर (बिहार)

जगाना है नारी चेतना को

प्रिय संपादक,

अब स्वदेशी पत्रिका और अच्छी लगने लगी है क्योंकि खासकर 'संस्कृति' स्तंभ को पढ़कर जो सांस्कृतिक चेतना जागती थी वह 'घर-गृहस्थी' को पढ़कर व्यावहारिक बन जाती है। सच पूछिए तो स्वदेशी के लिए सबसे अधिक महिलाओं को ही जगाने की जरूरत है। महिलाएँ अगर ठान लें कि वे विदेशी चीजें घर में आने नहीं देंगी तो विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का लुभावना से लुभावना प्रचार भी बेकार हो जाएगा। मैं तो स्वदेशी प्रक्रिया की आभारी हो गई हूँ क्योंकि अब मेरा मन ही ऐसा हो गया है कि मैं अपने देश में बनी चीजों को खरीदने में गर्व महसूस करती हूँ। आपका 'घर-गृहस्थी' स्तंभ हमेशा छपता रहे – यह मेरा भी अनुरोध है।

- कल्पना घोष
रवीन्द्र सरणी, कोलकाता।

उन्होंने कहा

जनरल मुशर्रफ को आमंत्रित किए जाने को भारत की कमजोरी नहीं समझना चाहिए बल्कि इसे भारत के आत्मविश्वास के रूप में देखा जाना चाहिए।

प्रधानमंत्री
अटल बिहारी वाजपेयी

जब महाराष्ट्र के लिए बिजली खरीद पाना संभव नहीं हो पाया तो केंद्र किस प्रकार दाभोल से बिजली खरीद कर उसे दूसरे राज्यों को बेचेगा।

केंद्रीय बिजली मंत्री
सुरेश प्रभु

बहुराष्ट्रीय कंपनियों को लघु उद्योग क्षेत्र में आने की खुली छूट देकर घरेलू ईकाइयों को पूरी तरह नष्ट करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

अध्यक्ष लघु उद्योग भारती
डॉ. श्याम सुन्दर अग्रवाल

हमारी सरकार भले विश्व व्यापार संगठन के आगे झुक जाए, लेकिन हम लोग अपने देश को बर्बाद नहीं होने देंगे।

महसाणा जिले का एक किसान

विश्व व्यापार संगठन के कहने पर कृषि पर जो सब्सिडी मिलती है वह बंद कर दी गई है। डीजल, बिजली और खाद काफी महँगे हो रहे हैं। किसान कर्ज के बोझ तले दबे जा रहे हैं और अनेक आत्महत्या की ओर बढ़ रहे हैं।

साबरकाठा जिले का कृषक
बाल जी भाई ठाकुर

सम्पादकीय

आर्थिक लोकतंत्र की सुबह......

इन दिनों अमरीकी सांसदों ने दस करोड़ डॉलर केवल क्यूबा के कम्युनिस्ट शासक फिदेल कास्ट्रो की सत्ता गिराने के लिए खर्च करने का प्रस्ताव रखा है। ग्यारह सीनेटरों और प्रतिनिधि सदन के नब्बे सदस्यों की सहमति इस बात पर है कि एक ऐसा विधेयक पारित किया जाए, जिससे फिदेल कास्ट्रो के विरोधियों को सहायता पहुँचाने की नीति व्यवहार में लाई जा सके। सीनेट की विदेश संबंधी समिति के अध्यक्ष गेसे हेलम्स का दावा है कि इस प्रकार की आर्थिक सहायता और रणनीतियाँ पॉलैण्ड और पूर्वी यूरोप के देशों की राजनीतिक सत्ता को बदलकर अनुकूल बनाने में प्रभावकारी हुई। क्यूबा की सत्ता पटलने के लिए वहाँ के भूमिगत आंदोलन चलाने वालों, राजनीतिक बंदियों, विस्थापितों, मानवाधिकार के कार्यकर्त्ताओं और पत्रकारों को हर प्रकार की मदद देने के लिए दस करोड़ डॉलर कम है। अमरीकी काँग्रेस को इराक और ईरान में भी तख्ता पलट के लिए धन एकत्र करने की जरूरत है।

अमरीका क्यूबा के शासक पर इसलिए नाराज है कि जब उत्तर और दक्षिण अमरीका के ३४ देशों का संयुक्त रूप से मुक्त व्यापार क्षेत्र बन रहा था तो फिदेल कास्ट्रो ने उनका साथ नहीं दिया, उल्टे उन्होंने मुक्त व्यापार क्षेत्र के विरोधियों का प्रतिनिधित्व भी किया। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के शासक जार्ज डब्ल्यू बुश ने लोकतांत्रिक मूल्यों को सबल बनाने और विकास के नारा देकर यह आर्थिक गुट तैयार करने का प्रयास किया है। वास्तव में अमरीकी आर्थिक शक्तियों का यह मोर्चा विश्व के अन्य आर्थिक गुटों का मुकाबला करने के लिए तैयार हुआ है। आज के आर्थिक विश्व युद्ध में डॉलर और आयुधों के भय से अमरीका कई देशों की राजनीतिक सत्ता को मार चुका है। जिस देश का शासक अमरीका के लिए बाजार बनने से आनाकानी करता है, या बाधाएँ उत्पन्न करता है, उसकी सत्ता पलट दी जाती है और जो शासक उसकी शर्तों को मानकर उसका आर्थिकहित पोषित करता है वह सत्ता पर बने रहने में उसका सहयोग पाता रहता है। इसके लिए शासक को अपने देश के हितों को छोड़ देना पड़ता है। अर्थात् वह शासक जनता की अपेक्षाओं को पूरी करने के बंदले अमरीका के हितों का पोषण करता है और अपने देश को मृत बना देता है। दूसरे देशों की राजनीति में अमरीका इस मतलब से हस्तक्षेप करता है कि उन देशों में उसे बाजार का लाभ मिलें। बाजार और सत्ता का यही समीकरण आज द्वंद्व बना हुआ है।

जार्ज बुश तो लोकतांत्रिक मूल्यों का नारा देकर वास्तव में कंपनीवाद को बढ़ाने का विश्वासी है। कंपनीवाद या पूँजीवाद आर्थिक तानाशाही है। यह आर्थिक तानाशाही कम्युनिस्ट देशों में दैशिक धरातल पर चलता रहा, जहाँ श्रमिकों और उत्पादकों में आर्थिक स्वतंत्रता नहीं थी, जिससे निरुत्साह फैलने लगा और एक अवस्था ऐसी आई, जब परिणाम विघटनकारी हो गए।

इन दोनों से अलग पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने आर्थिक लोकतंत्र के भारतीय आर्थिक दृष्टिकोण को सामने रखा था। उनकी स्थापना है कि **राजनीतिक शक्ति का प्रजा में विकेंद्रीकरण करके जिस प्रकार शासन की संस्था का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार आर्थिक शक्ति का भी प्रजा में विकेंद्रीकरण करके अर्थव्यवस्था का निर्माण एवं संचालन होना चाहिए। राजनीतिक प्रजातंत्र में व्यक्ति की अपनी रचनात्मक क्षमता को व्यक्त होने का पूरा अवसर मिलता है ठीक उस प्रकार आर्थिक प्रजातंत्र में भी व्यक्ति की क्षमता को कुचलकर रख देने का नहीं, अपितु उसको व्यक्त होने का पूरा अवसर प्रत्येक अवस्था में मिलना चाहिए।** जिस काल में दीनदयाल जी यह विचार दे रहे थे, देश में औद्योगिकीकरण की जोरदार वकालत हो रही थी। आज यह औद्योगिकीकरण बहुराष्ट्रीय कंपनियों की ऐसी आर्थिक शक्तियों के रूप में परिवर्त्तित हो चुका है जिसके हाथ में राजनीतिक व्यवस्था एक प्रबंधक की दशा को प्राप्त हो चुका है। अमरीकी शासक लोकतंत्र की बात करते हुए हास्यापद लगते हैं। यह कैसा लोकतंत्र है, जिसमें व्यापक जनजीवन के हित के बदले व्यावसायिक शक्तियों के हित का पोषण किया जाता है? यदि व्यावसायिक शक्तियाँ व्यापक जनहित करने लगेंगी और पर्यावरण की रक्षा करने लगेंगी तो उनके धन–शोषण का कारोबार कैसे चलेगा। यह ध्यान देने योग्य संवाद है, जब व्यापक जनजीवन के शोषण से उत्पन्न बेरोजगारी के संत्रासों और बढ़ते अपराधों के मामले सामने आते हैं तो धन शोषक कहता है, वह मजबूर और मुहताज हो रहे लोगों को आर्थिक सहायता दे देगा। क्या इनसे भीख लेकर लोग जीएँगे? श्रम, उत्पादन और बाजार को समाज के ईकाई स्तर पर ले जाने का कार्य करना होगा — यही आर्थिक लोकतंत्र है। यही भाषा शासक को भी बोलने पर मजबूर किया जाता है, और यह लक्षण बताता है कि प्रजातंत्र समाप्त हो गया। चिरकाल से भारत के वनवासियों और गाँव–गाँव के लोगों को श्रम–कौशल, उत्पादन और उपयोग की स्वतंत्रता रही है। इसीलिए आज भी उत्पादों की विविधता दिखाई देती है। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे किसी शोषक तंत्र पर आश्रित होते तो उनकी उत्पाद विविधता समाप्त हो जाती। उनकी जातीय पहचान और अस्तित्व मिट गया होता। भारत की सनातन अस्मिता को आर्थिक लोकतंत्र ने बचा रखा है। आज इनकी क्षीण होती दशा पर भी कंपनीवाद का विनाशकारी बादल छाने लगा है। देश की अर्थव्यवस्था के ऊपर के स्तरों और औद्योगिक क्षेत्रों पर ही नहीं, दैनिक जरूरत की चीजों पर भी बड़ी कंपनियाँ हमला बोलने लगी हैं। समय आ गया है कि आर्थिक लोकतंत्र की भारतीय अवधारणा का चारों ओर उद्घोष हो। पचास वर्ष के विकास पथ का दिशा भ्रम अब देश को एक अँधेरी गुफा में ला खड़ा किया है। उदारीकरण यही अँधेरी मौत की गुफा है। हमें इस गुफा की चिन्दियाँ–चिन्दियाँ उड़ा देनी होगी, जिससे सूरज का स्वच्छंद प्रकाश हम तक पहुँचे। हमारे पास वैचारिक रोशनी आर्थिक लोकतंत्र के रूप में प्राप्त है — यही विश्व में नई स्वतंत्रता की सुबह बनेगा।

Scanned with OKEN Scanner

अग्रलेख

एनरॉन के हाथों गिरवी है राष्ट्र की संप्रभुता

पी.बी. सामंत

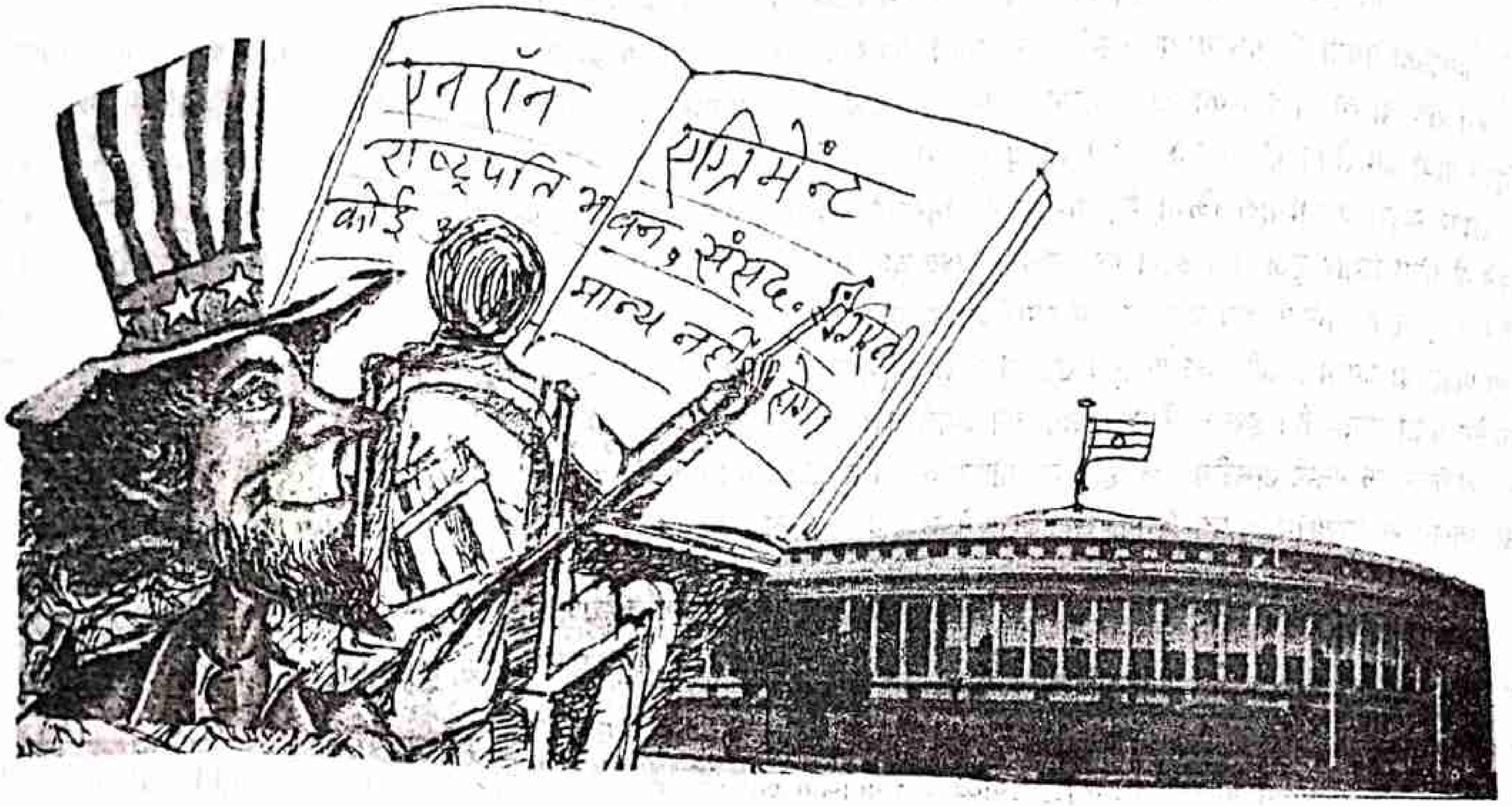

वर्ष १९९५ में काँग्रेस के खिलाफ महाराष्ट्र विधानसभा के चुनाव में भाजपा-शिवसेना गठबंधन ने नारा दिया था कि 'हम सत्ता में आए गए तो एनरॉन को अरब सागर में डूबा देंगे।' नारा फल गया। भाजपा-शिवसेना गठबंधन की सरकार बनी। महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मनोहर जोशी ने विधानसभा में वक्तव्य दिया, जिस तरह की जल्दबाजी में एनरॉन के अनुबंध पर हस्ताक्षर किया गया, उसके आधार पर कहा जा सकता है। कि 'एनरॉन के साथ हुआ समझौता महाराष्ट्र के खिलाफ है। यह मूर्खतापूर्ण है इसमें राज्य के सम्मान का ध्यान नहीं रखा गया है। इस अनुबन्ध को स्वीकार कर लेना राज्य की जनता के साथ धोखा है। इस अनुबंध ने राज्य की जनता को कहीं का नहीं छोड़ा इसलिए हानि सहकर भी इस अनुबंध को समाप्त करना होगा। इस अनुबंध को करवाने में शामिल लोगों का पर्दाफाश भी करना होगा। हम इन दोनों मुद्दों पर काम कर रहे हैं। हम आज से ही इस अनुबंध को रद्दी की टोकरी में डाल रहे हैं।'

इस वक्तव्य ने महाराष्ट्र विधानसभा, केंद्र की सरकार और पूरे देश की जनता को जागृत कर दिया। आखिर श्री जोशी को इस तरह का वक्तव्य देने की जरूरत पड़ी क्या? इसका प्रमुख कारण थी एनरॉन के साथ हुए समझौते की शर्तें; जिनके अंतर्गत पूरे राष्ट्र की संप्रभुता को एनरॉन के हाथों गिरवी रख दिया गया है –

महाराष्ट्र की काँग्रेसी सरकार ने १०/२/९४ को संविधान की धारा ११२(३) (सी) एवं २०३(३) सी के अंतर्गत एनरॉन को इस परियोजना के लिए गारंटी दी, जिसमें काँग्रेसी सरकार ने देश की सभ **अचल सम्पत्तियों को गिरवी रखी। इ गिरवी की सूची में राजभवन, विधा भवन, मंत्रालय भवन, उच्च न्यायाल भवन, नदियाँ, बाँध, उद्योग और अन सभी राजकीय सम्पत्तियाँ शामिल है एनरॉन की बकाया राशि का भुगता नहीं कर पाने की स्थिति में गिरवी रखं हुई सम्पत्ति से भुगतान होगा।**

इस गारंटी को देते हुए ग्रांटर ने स्पष किया है कि देश की संप्रभुता के नाम प किसी भी न्यायालय में इस समझौते क विरोध नहीं किया जाएगा। ग्रांटर ने वर्तमा और भविष्य की सभी परिसंपत्तियों प अपने अधिकार को समर्पित कर दिया है। यह गारंटी एनरॉन के पक्ष में न्यायालय द्वारा किए गए प्रत्येक आदेश को लागू करने में सहयोगी होगी।

Scanned with OKEN Scanner

ठीक इसी प्रकार केंद्र सरकार ने भी १५/९/९४ में एनरॉन को प्रति गारंटी दी थी। इस गारंटी में एनरॉन के बकाया भुगतान के लिए केंद्र सरकार ने अपनी सभी अंचल परिसम्पत्तियों - राष्ट्रपति भवन, संसद सचिवालय, उच्चतम न्यायालय भवन, एयर लाइन, रेलवे, सड़क, तेल एवं गैस क्षेत्र इत्यादि को सम्मिलित किया है।

इसके कुछ विवरण निम्नलिखित हैं -

(अ) ग्रांटर बिना शर्त और अपरिवर्त्तनीय रूप से स्वीकार करता है कि वह इस गारंटी में दिए गए किसी भी परिसम्पत्ति की मुक्ति के लिए किसी भी न्यायालय के आदेश का प्रयोग नहीं करेगा।

(ब) वह इन परिसम्पत्तियों की मुक्ति के लिए किसी भी न्यायालय में दावा नहीं करेगा।

(स) यह स्वीकार करता है कि किसी भी न्यायालय में गिरवी रखी हुई परिसम्पत्ति को मुक्त कराने के लिए कोई भी याचिका दायर की जाती है तो ग्रांटर उस याचिका का पक्ष नहीं लेगा।

(द) गारंटी समझौते के पैराग्राफ १४ में दी गयी परिसम्पत्तियों में रक्षा संबंधी परिसम्पत्ति सम्मिलित नहीं होगी।

एनरॉन के साथ राज्य सरकार और केंद्र सरकार दोनों के समझौते एक समान है। इन दोनों में अंतर केवल यही है कि केंद्र सरकार के साथ हुए समझौते में रक्षा संबंधी परिसम्पत्ति को गिरवी में शामिल नहीं करने का उल्लेख है।

इसमें सबसे कठोर सच यह है कि राष्ट्रीय संप्रभुता को कुछ लोगों ने मिलीभगत से एनरॉन जैसी विदेशी कंपनी के पास गिरवी रख दिया। जिन लोगों ने यह दुष्कार्य किया, उन्होंने अपने साथ-साथ पूरे राष्ट्र को भी बेंच डाला है। यदि यही घटना इंग्लैण्ड में हो जाए, वहाँ के संसद भवन, बकिंधम पैलेस, १० डाउनिंग स्ट्रीट और अन्य राजकीय अचल सम्पत्तियों को एनरॉन के हाथों कोई गिरवी रख दें तब कैसी परिस्थिति सामने होती? क्या यह घटना अमरीका में भी हो जाए तो वहाँ की जनता चुप बैठी रहती?

जनता १५ अगस्त २००१ के स्वतंत्रता दिवस को इस नई गुलामी से मुक्ति पाकर मनाना चाहिए। इसी तरह का प्रयास महाराष्ट्र में करना होगा। आइए, एक बार फिर जननी जन्मभूमि की स्वतंत्रता के लिए उठ खड़े हो, यही हम सभी के भविष्य को निरंतर बनाए रखने का एक मात्र मार्ग है।

जिन लोगों ने देश के साथ ऐसा विश्वास घात किया, उन्हें कठोर दण्ड मिलना चाहिए। यह दण्ड किस कानून के अंतर्गत हो, कैसा हो ये प्रश्न भी विचारणीय होंगे। लेकिन इस महत्वपूर्ण विषय को झटका देने वाली और भी कई राहें हैं।

ईस्ट इंडिया कंपनी १६०० ई० में भारत में शाहजहाँ के समय में आई। उन्होंने एक हाथ में धन का प्रलोभन और दूसरे में तलवार लेकर १८५७ ई० आते-आते अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इसके बाद १९४७ तक यहाँ ब्रिटेन की रानी राज करती रही। इस इतिहास काल में उनके किए हुए दुष्कार्यों का अभी भी स्पष्ट लेखा-जोखा नहीं है। वह गुलामी भी समझौतों का चमत्कार थी।

एनरॉन भी इस तरह के समझौतों का एक विशेषज्ञ बहुराष्ट्रीय कंपनी है। इसने दाभोल जैसी परियोजना का मेमोरेंडम ऑफ अण्डर स्टैडिंग को केवल दो दिनों में प्राप्त कर लिया। इसने महाराष्ट्र सरकार को अपनी अंगुलियों पर नचाया। दाभोल में गैस पोर्ट के लिए मंजूरी पा ली और दूसरे कार्य भी किए - भारतीय कानून को अपने अनुसार तोड़ा-मोड़ा। यह सब इसने जून २०, १९९२ को अनुबंध पर हस्ताक्षर होने के बाद किया। जिस काम को ईस्ट इंडिया कंपनी चार वर्षों में भी नहीं कर पाई थी, उसे एनरॉन ने ३-४ वर्ष के भीतर कर लिया। एनरॉन ने सिद्ध कर दिखाया कि वह ईस्ट इंडिया कंपनी का २१वीं सदी वाला अवतार है। इसके पीछे विश्व व्यापार संगठन, अमरीका, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष जैसी संस्थाओं का सहयोग है। वस्तुतः यह भारत जैसे विकासशील देशों के शोषण का एक नया जाल है। यह जाल भारत सरकार की नीतियों को अभी से प्रभावित करता जा रहा है। इस काम में एनरॉन सबसे तेज कंपनी है। एनरॉन भी ईस्ट इंडिया कंपनी की तरह है। जैसे कोई आठ पंजों वाला आक्टोपस हो जिसके पंजों में जकड़कर राष्ट्र की संप्रभुता दमतोड़ देने के दशा में पहुँचती चली जा रही है।

हमें एनरॉन का सामना अपने संविधान के आधार पर करना होगा। हमें गिरवी रखी देश की परिसंपत्तियों को मुक्त करना होगा और अवैध तरीके से एनरॉन द्वारा पाए हुए अधिकार को समाप्त कर देना होगा। हमें यह प्रमाणित कर देना होगा कि प्रत्येक व्यापारिक समझौता देश के नियम-कानून के अंतर्गत होना चाहिए। यह जिम्मेदारी और चुनौती हमारे सामने आ खड़ा हुआ है।

देश के जिन जागरूक नागरिकों को राष्ट्र के स्वाभिमान और प्रतिष्ठा की हानि से अपार पीड़ा का अनुभव हो रहा है उन्हें चुप नहीं बैठना चाहिए, राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री से माँग करनी चाहिए कि इस विषय पर बहस के लिए संसद का विशेष सत्र बुलाया जाए, साथ ही मीडिया के सभी माध्यमों से जनता के बीच इस विषय

Scanned with OKEN Scanner

के प्रति जागृति लानी चाहिए। जनता १५ अगस्त २००१ के स्वतंत्रता दिवस को इस नई गुलामी से मुक्ति पाकर मनाना चाहिए। इसी तरह का प्रयास महाराष्ट्र में करना होगा। आइए, एक बार फिर जननी जन्मभूमि की स्वतंत्रता के लिए उठ खड़े हो, यही हम सभी के भविष्य को निरंतर बनाए रखने का एक मात्र मार्ग है।

एनरॉन की इस कहानी का प्रारंभ १९९२ में उदारीकरण की ओर कांग्रेस सरकार के बढ़ते कदमों के साथ हुआ था। इन दिनों केंद्र में नरसिंहराव के नेतृत्व में चल रही काँग्रेसी सरकार थी। इस सरकार ने वित्तीय और आर्थिक स्थिति को सम्हालने के लिए उदारीकरण की नीति अपनाई थी। इस सरकार ने विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के दबाव में आकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बाजार में प्रवेश की छूट दी थी।

बिजली उत्पादन के क्षेत्र में सरकार ने यह निर्णय लिया कि बिजली उत्पादन को २२५२८ मेगावाट तक बढ़ा देनी है। जिसमें १५५२ मेगावाट उष्मीय उर्जा से, ५२६० मेगावाट गैस से, १८८५ मेगावाट जल ऊर्जा से और शेष १४५ मेगावाट अन्य स्रोतों से प्राप्त होगी। जबकि महाराष्ट्र राज्य ने ४२० मेगावाट ऊष्मीय उर्जा का कोटा खापरखेड़ा में दिया और ८२० मेगावाट गैस ऊर्जा का संयंत्र मागोथेन में दिया। इस योजना में दाभोल बिजली उपक्रम की कोई चर्चा नहीं थी।

केंद्र सरकार द्वारा तैयार एक सूची-प्रपत्र तैयार हुआ था उससे यह ज्ञात होता है कि उच्चपदासीन अफसरों का एक प्रतिनिधि मंडल यूरोप भेजा गया इस प्रतिनिधि मंडल ने अमरीका में अप्रैल-मई १९९२ में एक कंपनी से संपर्क किया जो ऊर्जा उत्पादन करती थी। यह कंपनी मई के अंत में एनरॉन के साथ जुड़ गई।

एनरॉन का यही दल दिल्ली में १५ जून १९९२ को आई।

१. १५-१७ जून, १९९२ – केंद्र सरकार के साथ दिल्ली में एनरॉन का समझौता।
२. १७ जून, १९९२ – एनरॉन के दल का मुम्बई आगमन। दिल्ली और महाराष्ट्र के विद्युत प्रभारियों को एनरॉन के साथ तालमेल और सहयोग का निर्देश।
३. १८ जून, १९९२ – एनरॉन दल द्वारा स्थान का चुनाव करने के लिए कोंकण राज्य के नागोथेन, कुडान, रत्नागिरि, दाभोल और अन्य क्षेत्रों का दौरा।
४. १८-१९ जून, १९९२ – राज्य सरकार के पदाधिकारी और महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड के साथ एनरॉन की बैठक प्रकाशगढ़ में हुई। यह स्थान महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड का मुख्यालय है। इस बैठक में एनरॉन ने प्रस्ताव रखा कि ९००० करोड़ रुपए में हम २०००-२४००० मेगावॉट देंगे। इसके लिए विदेशी गैस को ईंधन के रूप में उपयोग होगा।

बिजली की कीमत प्रति यूनिट २.३३ रुपए रखी गई। ध्यान देने बात है कि उस समय भी महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड की बिजली ९० पैसे प्रति यूनिट के हिसाब से पड़ रही थी।

एनरॉन का यह प्रस्ताव भारतीय बिजली उत्पादन नीति की सीमा के भीतर नहीं था और देनदारी में भी अधिक महँगा था। इस बैठक में शामिल हुए सभी भारतीय पदाधिकारियों ने इस परियोजना को एक औपचारिक स्वीकृति ही दी थी।

५. २० जून, १९९२ एनरॉन की परियोजना को मुख्यमंत्री और केंद्र सरकार पदाधिकारियों की उपस्थिति में स्वीकृति प्राप्त हुई थीं।

एनरॉन भारत सरकार के विद्युत अधिनियम का अतिक्रमण करने में सफल हुआ था। दुर्भाग्यवश केंद्र सरकार ने एक आदेश जारी करके एनरॉन के अनुबंध की अवैध शर्तों को वैधानिकता प्रदान किया। जिससे एनरॉन मजबूत बना, अन्यथा बिजली की कीमत में मनमानी करना संभव नहीं होता।

एनरॉन के साथ हुए समझौते के बाद यह विवादास्पद प्रश्न उठा कि इसका संचालन कौन करेगा? एनरॉन भारत सरकार के विद्युत अधिनियम का अतिक्रमण करने में सफल हुआ था। दुर्भाग्यवश केंद्र सरकार ने एक आदेश जारी करके एनरॉन के अनुबंध की अवैध शर्तों को वैधानिकता प्रदान किया। जिससे एनरॉन मजबूत बना, अन्यथा बिजली की कीमत में मनमानी करना संभव नहीं होता।

भारतीय विद्युत अधिनियम के अनुसार प्रत्येक कंपनी और बोर्ड के लिए यह अनिवार्य है कि वे विद्युत परियोजना का पूरा विवरण और लागत मूल्य का ब्योरा प्रस्तुत करें। लागत मूल्य के अनुसार विद्युत मूल्य निर्धारित किया जाएगा। विवरण के अभाव में मूल्य निर्धारण संभव नहीं होगा। एनरॉन ने परियोजना का विवरण आजतक प्रस्तुत नहीं किया।

एनरॉन ने दाभोल विद्युत परियोजना की व्यवस्था में ऐसे दाँवपेंच लगा रखे है कि उस पर सीधा आरोप नहीं लगाया जा सके उसने अपने ऊपर लगने वाले आरोपों से बचने के लिए जटिल कानूनी रास्ता बनाया है। एनरॉन की दाभोल विद्युत परियोजना में १२ विदेशी कंपनियाँ शामिल हैं इनके अधिकारों की रचना काफी संश्लिष्ट है। एनरॉन के शोषक पंजों को तोड़ने की चुनौती अभी सामने है। ■

(पी.बी. सामंत के मूल लेख का भाषान्तरित अंश - सं०)

Scanned with OKEN Scanner

एनरॉन के विरोध का दूसरा चरण

(एनरॉन विरोधी आन्दोलन में आरंभ से ही सक्रिय, जेल और अनशन के तपिस में राष्ट्र निष्ठा का परिचय देने वाले राष्ट्रीय कृति ऊर्जा दल के संयोजक श्री अनिल गचके के साथ हुई बातचीत के आधार पर तैयार लेख....सं.)

एनरॉन के विरुद्ध स्वदेशी जागरण मंच की लड़ाई का दूसरा चरण प्रारंभ हो चुका है। संभव है, यही दूसरा चरण निर्णायक हो जाए और अंतिम चरण की लड़ाई बन जाए। स्वदेशी जागरण मंच ने यह लड़ाई १९९३ से १९९६ तक तीन वर्ष तक बड़े जोरदार ढंग से लड़ी थी। लेकिन इस लड़ाई को सफलता नहीं मिली। इससे राजनीतिक सत्ता के परिवर्त्तन की घटना भी हुई। कभी एनरॉन के खिलाफ भाजपा और शिवसेना भी स्वदेशी जागरण मंच के साथ शामिल थी। उन दिनों भाजपा के नेता विपक्ष में थे। भाजपा नेता श्री गोपीनाथ मुण्डे एनरॉन पॉवर प्रोजेक्ट को अरब सागर में डूबा देने की बात करते थे। बड़ी उम्मीद थी कि ये लोग सरकार में आएँगे तो नई दिशा मिलेगी। लेकिन सरकार में आने के बाद इनकी मति बदल गयी। एनरॉन को अरब सागर में डूबाने के बदले सत्ता में आने के बाद इन्होंने उसका उद्धार करना शुरू कर दिया। इससे स्वदेशी जागरण मंच के आंदोलन को धक्का लगा। ध्येय निष्ठ कार्यकर्त्ताओं और सत्ता लोलूप नेताओं का अंतर स्पष्ट होने के साथ ही स्वदेशी जागरण मंच ने अपना मोर्चा स्वयं ही सम्हाल लिया।

१९९३ से ९६ के बीच स्वदेशी जागरण मंच ने एनरॉन से होने वाली हानियाँ के विषय में जो बात बताई थीं – वह आगे चलकर जनता के सामने आने लगीं। ये बातें भविष्यवाणी नहीं थी, बल्कि इन्हें एनरॉन के साथ किए गए घातक शर्तों वाले समझौते के प्रावधानों की गहरी समीक्षा के आधार पर बताई गई थी। इनमें बिजली की कीमत में बेरोक वृद्धि होने की बात सच हुई, जिस कीमत को किसी भी दशा में सहन करना बिजली उपभोक्ताओं के लिए संभव नहीं था।

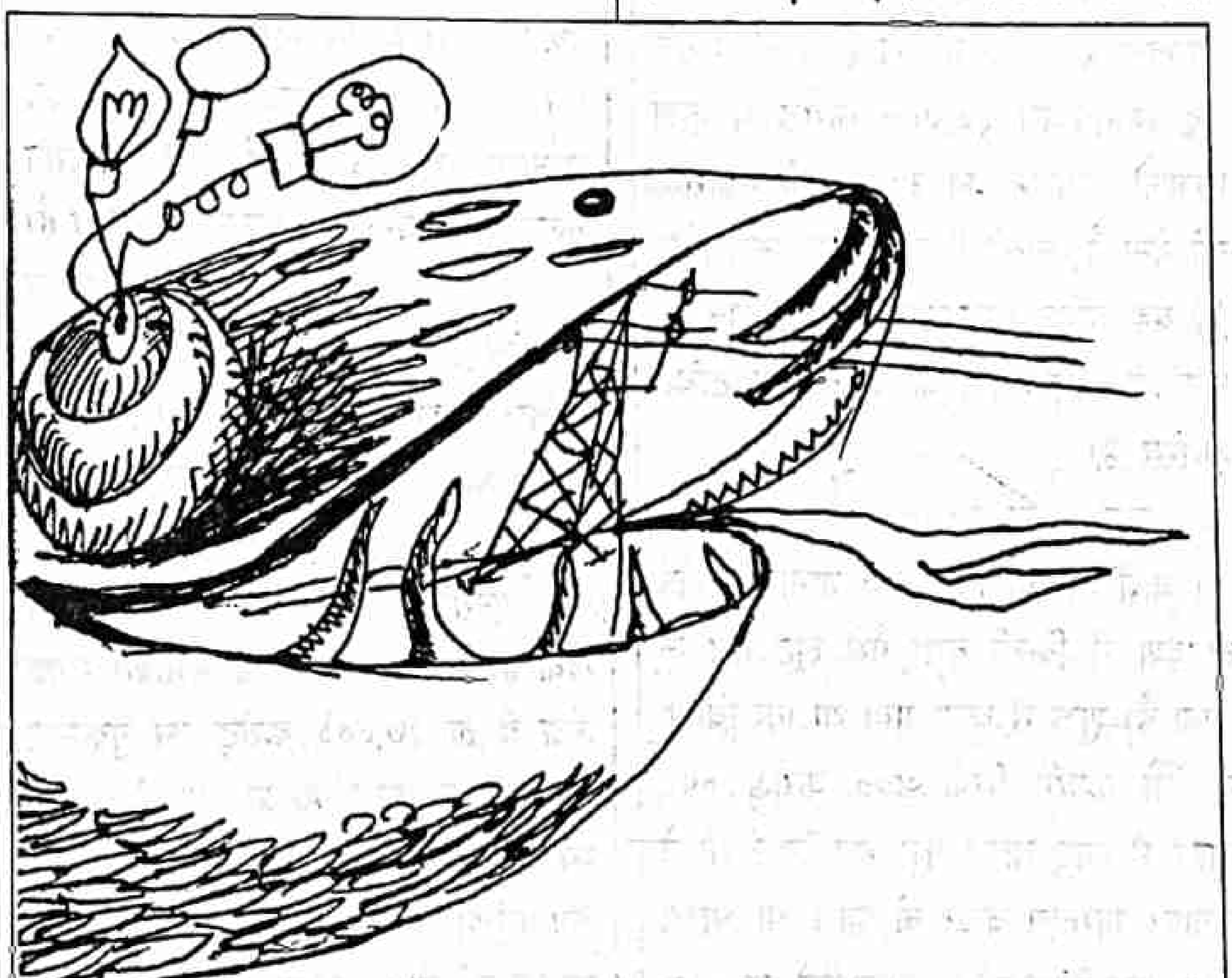

इस प्रकार की समस्याएँ एनरॉन ने महाराष्ट्र में पहली बार उत्पन्न नहीं की है, इसने विश्व के कई देशों में इस तरह के शोषण का जाल फैला रखा है। इसके मारे हुए कई देशों की व्यथा-कथा को एकत्र किया गया। साथ ही इसकी जानकारी भी एकत्र की गई कि एनरॉन को कब-कब कितने आर्थिक दण्ड भोगने पड़े। अमरीकी देशों में मिलियन डॉलर से कम दण्ड नहीं लगते हैं इन दण्डों को एनरॉन भोग चुकी है। एनरॉन को कुछ लोगों ने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए महाराष्ट्र पर थोप दिया। इसकी बिजली की कीमत देना न तो महाराष्ट्र सरकार के वश की बात है न महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड के वश की बात। दोनों दीवालिया हो जाएँगे। स्वदेशी जागरण मंच ने पहले ही इस बात को बताया था कि पाँच से छह रुपये प्रति यूनिट बिजली की कीमत हो जाएगी, आज यह मूल्य सात रुपये तक हो गया है। हर महीने में २०० करोड़ रुपए देने की संभावना व्यक्त की गई थी। पहले टप्पे में इस हिसाब से साल के २००० करोड़ होते, इसकी पहली योजना २४०० करोड़ रुपए की बनी, जिसके प्रति वर्ष २००० करोड़ देते रहना तय हुआ था। इतना मूल्य देना दीवालिया होने के लिए पर्याप्त था।

इसके खिलाफ लड़ने के लिए स्वदेशी जागरण मंच के पास पॉवर प्रोजेक्ट का

एंग्रीमेंट और केवल राष्ट्रहित की निष्ठा यही दो हथियार थे। लेकिन उनकी ताकत बहुत बड़ी थी। वे लोग सरकार सहित सबको खरीद सकते थे। उन्होंने सबको खरीद कर दिखा दिया जो बिकने लायक थे वे बिक गए लेकिन वे स्वदेशी जागरण मंच को नहीं खरीद पाए। जिनको वे लोग खरीद नहीं पाए, उनके खिलाफ अटक कर बैठ गए। इनका आन्दोलन अविराम चलता रहा।

१९९६ के बाई मई १९९९ में एनरॉन की पहली देनदारी शुरू हुई। एक साल में ही महाराष्ट्र बिजली बोर्ड दीवालिया हो गया। बोर्ड का कुल आय मात्र २००० करोड़ रुपए था। यह अभी २०% बिजली की कीमत थी। अंभी एनरॉन दूसरे चरण के पूरा हो जाने पर ६००० करोड़ रुपए प्रति वर्ष देने की शर्त बाकी है। महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड की आमदनी इस अनुपात में तो बढ़नेवाली है नहीं। जबकि एनरॉन की आमदनी २००० करोड़ से १०,००० करोड़ बढ़ सकती है। १०,००० करोड़ में कुल बिजली उत्पादन का ६०% उन्हें महाराष्ट्र को देना है, बाकी बिजली का क्या होना है? यह कठिन समस्या लोगों के सामने आ चुकी है। यह लोगों के जगाने का उचित अवसर है।

इसके बाद ६००० करोड़ रुपए देने की बारी आएगी फिर क्या होगा? उन्होंने तो देश से किसी तरह पैसे लूट कर ले जाना है। शुरू में कहा गया था कि विदेश से पैसे आएँगे सिर्फ ४०० करोड़ रुपए बाहर से आए बाकी पैसे भारतीय बैंको ने लगाए। भारतीय बैंको के साथ भी धोखा हुआ। भारतीय बैंकों ने अपने पैसे पर २१% ब्याज रखे थे। इस शर्त पर एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर हुए लेकिन बाद में इनके पैसों के ब्याज को २१% से घटकर १४१/२% कर दिया गया। इससे भारतीय बैंको को ५५६ करोड़ रुपए का घाटा हुआ है। यह विषय भी सभी लोगों के सामने आ रहा है। एनरॉन के दूसरे स्टेज के आ जाने के बाद महाराष्ट्र के दूसरे, विद्युत संयंत्रों में से

विवादों से घिरता एनरॉन.......

एनरॉन की दाभोल बिजली परियोजना इन दिनों तेज गति से विवादों में फँसता जा रही है। माधव गोडबोले समिति की रिपोर्ट आने के बाद उसे २५ अप्रैल को लंदन में हुई एनरॉन की बैठक में अस्वीकार कर दिया गया।

एनरॉन को महाराष्ट्र और पूरे राष्ट्र के गले में आर्थिक शोषण की फाँसी बनाकर लटकाने का प्रथम श्रेय पाने वाले श्री शरद पवार ने गोडबोले को नकारात्मक सोंच का व्यक्ति कहर परिस्थिति को और भड़का दिया। गोडबोले ने शरद पवार की टिप्पणी पर समिति से इस्तीफा दे दिया, इसके बाद राज्य सरकार ने उनसे इस्तीफा वापस लेने का आग्रह किया। इस्तीफा का मामला रुका लेकिन गोड़बोले समिति से शरद पवार के करीबी माने जाने वाले तीन सदस्यों ने इस्तीफा देकर यह सिद्ध कर दिया कि एनरॉन का पक्ष लेने वाले शरद पवार में भी दम है। इन घटनाओं से साफ लगता है कि एनरॉन राजनीतिक दाँवपेंच का हिस्सा बन चुका है।

विद्युत खरीद समिति के अध्यक्ष माधव गोडबोले ने भी एनरॉन मुद्दे को इस दशा में पहुँचाने के पीछे राजनीति के हाथ होने और राजनेताओं का निजीहित को कारण बताया है।

एनरॉन ने प्राथमिक टर्मिनेशन नोटिस दिया है। यदि एनरॉन अपना कारोबार समेट लेता है तो १७,००० करोड़ का नुकसान राज्य सरकार का होगा। प्रति गारंटी में केंद्र को दो हजार नौ सौ करोड़ रुपए एनरॉन को देना पड़ेगा। नौकरशाहों की लॉबी एनरॉन का साथ दे रही है। एनरॉन दबाव बनाने का खेल शुरू कर चुका है।

और इधर महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड में भी जुझारू तेवर दिखाई देने लगे हैं। जब एनरॉन ने अप्रैल माह के बिजली व्यय के लिए १३९ करोड़ रुपए का बिल महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड को दिया। बोर्ड ने बिल में अधिक पैसे लिए जाने का आरोप लगाते हुए। पैसे कम करके १३६.८७ करोड़ का एक चेक भेज दिया। इस चेक को एनरॉन की बिजली कंपनी ने लेने से इनकार कर दिया। बोर्ड राज्य बिजली नियामक आयोग में एनरॉन बिजली की खरीद के समझौते को रद्द करने की बात उठाई और अनियमितताओं के लि कंपनी पर ७०० करोड़ का हर्जाने का दाव किया। बोर्ड ने नियामक आयोग के साम ६० पृष्ठों की याचिका रखी है जिसके सा एक हजार पृष्ठों का संलग्न भी है। बिजली कंपनी को भी बोर्ड ने बिजली खरीद अनुबं रद्द करने की नोटिस दे दी है।

इस नोटिस में कहा गया है कि भारती अनुबंध अधिनियम १८७२ का पालन करत हुए महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड एनरॉन बिजली कंपनी की बिजली खरीद अनुबंध को अवैध करार देता है। यह भी आरोप उठा है कि इस कंपनी ने वायदे के मुताबिक शत प्रतिशत उत्पादन नहीं कर पाई है। राज्य सरकार भी २,१८४ मेगावाट के इस बिजली घर की पूरी परियोजना को चालू करवाने के लिए उत्सुक नहीं है। बिजली खरीद अनुबंध के अनुसार साठ दिनों के भी एनरॉन का फैसला हो जाना चाहिए। एनरॉन की ओर से १९ मई को प्राथमिक टर्मिनेशन नोटिस दिया गया था। विवाद को देखते हुए बिजली सचिव अशोक वसु ने एनरॉन बिजली कंपनी के प्रबंध निदेशक वाइड क्लाइन से कहा है कि वह महाराष्ट्र सरकार द्वारा गठित माधव गोडबोले समिति के सामने अपना पक्ष रखें। क्लाइन बिगड़ी हुई दशा में केंद्र सरकार की ओर अधिक भाग रहे हैं। क्लाइन ने केंद्रीय बिजली मंत्रालय को विवादास्पद परिस्थिति से अवगत कराया और इधर महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड ने एनरॉन से बिजली खरीदना बंद कर दिया है। एनरॉन का अनुबंध नहीं मानने पर केंद्रीय बिजली मंत्री भी पल्ला झाड़ने की गोलमटोल बोल रहे हैं। इसके बाद दाभोल ने संयंत्र को बंद कर दिया है तथा बोर्ड को नोटिस भेजने की तैयारी कर रहा है। लड़ाई छिड़ चुकी है – देखना है अब ऊँट किस तरफ करवट बदलता है। ■

२०-२५% बंद कर देने पड़ेंगे।

स्वदेशी जागरण मंच की ओर से जन-जागृति का अभियान विभिन्न रूपों में चलाया जा रहा है। संगोष्ठी, प्रेस वार्त्ता, अनशन आदि के कार्यक्रम हो रहे हैं। अभी १० से १२ मई तक श्री अनिल गचके और मुम्बई प्रांत संयोजक रमेश भाई सेठ अनशन पर बैठे। यह ध्यान रखने वाली घटना है कि बतौर गैर-राजनीतिक संगठन स्वदेशी जागरण मंच के इन वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं ने जब राष्ट्रीय हित में शांतिपूर्ण अनशन का कार्यक्रम किया तो महाराष्ट्र सरकार की पुलिस ने एनरॉन का मनोबल बढ़ाने का कार्य करती रही और इसके लिए उन्होंने अनशन के निर्धारित स्थान पर जाने की अनुमति नहीं दी। बाध्य होकर यह कार्यक्रम भारतीय मजदूर संघ के कार्यालय में करना पड़ा। यहाँ भी पुलिस का हस्तक्षेप बना रहा। इस कार्यालय में भी अनशनकारियों को लाउडस्पीकर लगाने से मना किया गया। इससे स्पष्ट लगता है सरकारी अधिकारियों के साथ-साथ मुम्बई पुलिस भी एनरॉन के लूट को प्रश्रय देने का अपराध कर रही है। यह लोकतांत्रिक मूल्यों की हत्या है। इस कार्यक्रम में पत्रकार, आम जनता और सहयोगी संगठनों की भूमिका सराहनीय है। अनशन स्थल पर पत्रकार उपस्थित हुए और यहाँ से एक लाख पत्रक का वितरण हुआ। इस क्रम में मंच की ओर आंदोलन को जन-जन तक पहुँचने की योजना है। इसके लिए जन-जागरण यात्रा की तैयारी चल रही है। यह यात्रा बाबूगेनू की प्रतिमा पर पुष्पार्पण करके प्रारंभ होगी। यह यात्रा महाराष्ट्र के रायगढ़, रत्नागिरि, कोल्हापुर इत्यादि बारह जिलों तक जाएगी। इसमें एनरॉन पॉवर प्रोजेक्ट के स्थान पर भी जाना निश्चित हुआ है। यह यात्रा पूना में समाप्त होगी। दूसरे चरण की जन-जागरण यात्रा मराठवाड़ा और विदर्भ के क्षेत्र में जाएगी।

इस जन-जागरण यात्रा में एनरॉन से संबंधित जानकारियों से लोगों को अवगत कराया जाएगा कि इस लूट में भ्रष्ट नेताओं और नौकरशाहों की क्या-क्या कारगुजारियाँ रही है। तेरह दिन की केंद्र सरकार ने अपने समय में अंतिम समय में भोजनकर लेने के बाद इस्तीफा देने के एक घंटे पहले एनरॉन को बिना-विचार किए, संभवतः कागजात को बिना देखे, जाने-समझे काऊण्टर गारंटी दी थी। इतनी जल्दी क्या थी, आखिर इस काम को कर डालने की? और इस काम को करा लेने वाली कौन-सी प्रभावकारी ताकतें थी? भ्रष्ट तंत्र की। ये ताकतें सचमुच चिंता का विषय है। स्वदेशी जागरण मंच एनरॉन के विरोध में लड़ाई लड़ते हुए पूरी आशा कर रहा है कि इस विदेशी कंपनी को भारत छोड़कर

भारत सरकार विदेशी कंपनियाँ को देश मे बसाने का लगातार प्रयास कर रही है लेकिन एक एनरॉन के दुष्परिणामों का विरोध होने के कारण सरकारी प्रयास बेअसर हो गए हैं। वित्तमंत्री यशवन्त सिन्हा हांगकांग में जाकर विदेशी कंपनियों को निमंत्रण दे रहें है....

जाना पड़ेगा। इस दिशा में सफलताएँ मिलती जा रही है। जन-जागरण की दृष्टि से और भ्रष्ट सरकारी तंत्रों को बेपर्द करने के साथ ही भारत से विदेशी कंपनियों के भयवश भागने से भी इस विरोध की सफलताएँ सामने आ रही हैं।

विदेशी कंपनियों में स्वदेशी जागरण मंच के अभियान से निराशा फैल रही है। दो अन्य कंपनियाँ भी महाराष्ट्र में विदेश से आकर पाँव जमाने वाली थी। वे दोनों महाराष्ट्र से भाग खड़ी हुई। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के अनपारा और कर्नाटक से भी ओरिन्टेक्स नाम की कंपनी भाग खड़ी हुई है। एनरॉन ने भी भागने की पूरी तैयारी कर रखी है। लेकिन भारत सरकार एनरॉन के लिए मेहरबान है वह नहीं चाहती कि एनरॉन देश छोड़कर जाए इसका कारण रहस्यमय समझा जा रहा है। महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री शरद पवार जिनके कार्यकाल में एनरॉन कंपनी आई थी, यह कह रहें है कि एनरॉन का जाना – महाराष्ट्र के लिए भारी पड़ेगा। मुम्बई में हुए अनशन के दिन स्वदेशी जागरण मंच की ओर से टिप्पणी की गई थी कि एनरॉन तो हटने के पहले ही महाराष्ट्र पर भारी पड़ रहा है, इससे अधिक भारी पड़ने के बाकी क्या है? क्या महाराष्ट्र के बदले शरद पवार पर एनरॉन भारी पड़ने वाला है? स्वदेशी जागरण मंच ने माँग की है कि १९९३ से लेकर अबतक एनरॉन की सभी गतिविधियों, राजनीतिक और नौकरशाही के स्तर पर हुए सभी व्यतिक्रमों की न्यायालयीन जाँच होनी चाहिए। न्यायालयीन जाँच सीबीआई का अपेक्षित सहयोग में लिया जाना चाहिए। इसके तथ्य और आँकड़े देश की जनता के सामने आना चाहिए।

भारत सरकार विदेशी कंपनियाँ को देश मे बसाने का लगातार प्रयास कर रही है लेकिन एक एनरॉन के दुष्परिणामों का विरोध होने के कारण सरकारी प्रयास बेअसर हो गए है। वित्तमंत्री यशवन्त सिन्हा हांगकांग में जाकर विदेशी कंपनियों को निमंत्रण दे रहें है, मुख्य रूप से वह हिरमा, उड़ीसा में लग रही १०,००० मेगावाट की एक ऊर्जा योजना की साझेदार कंपनियों को भागने से रोकना चाहते हैं 'चाइना लाइट एण्ड पॉवर' कंपनी और रिलायन्स की साझेदारी में चल रही यह योजना भी एनरॉन के विरोध से प्रभावित होने लगी है। एनरॉन को देश से भगाने में सफल होकर यह सिद्ध किया जा सकता है कि देश के संसाधनों और प्रतिभा के बल पर हमारी उन्नति संभव है। विद्युत उत्पादन जैसे सामान्य औद्योगिक तकनीकी में ही क्यों क्राइजेनिक इंजन और परम संगणक के निर्माण भी हमारे देश की प्रतिभा चमत्कार सामने आ चुका है। इस प्रकार धन-साधन के भी विषय में देखें तो

Scanned with OKEN Scanner

एनरॉन कितना पैस विदेश से ले आया? ज्यादा पैसे भारतीय बैंकों के हैं। राष्ट्र की समृद्धि की भावना और श्रम का ह्रास विदेशियों को हर प्रकार से प्रश्रय देने वाला भ्रष्ट सरकारी तंत्र कर रहा है। देश पराश्रित और पंगु बनाने में इसी भ्रष्ट तंत्र का हाथ है। हमारे देश की प्रतिभा विदेशों में जाकर इसीलिए फलफूल रही है।

आज एनरॉन विरोधी अभियान में स्वदेशी जागरण मंच के साथ वैचारिक मतभेद भूलाकर वामपंथी और समाजवादी आ खड़े हुए हैं। इस समय महाराष्ट्र सरकार का घटक दल होने के बाद भी मजदूर किसान पार्टी के लोग और वयोवृद्ध समाजवादी नेता प्रो. एन.डी. पाटिल भी संघ परिवार के साथ है। एक मजेदार प्रसंग यह भी है कि १९९५-९६ में शिव सेना-भाजपा ने संयुक्त रूप से एनरॉन के खिलाफ एक मुकदमा किया था। उसमें छत्तीस ऐसी बिन्दुएँ रखी गई थी जो एनरॉन और उसे स्थापित करने वाले लोगों के विरुद्ध थे। बाद में एनरॉन के दलालों ने इन राजनीतिक दलों के नेताओं से गुप्त रूप से मामला खत्म करने का प्रयास किया इन लोगों ने मुकदमें को ... देकर रोक दिया, यह कहा ... बिन्दुओं में कोई दम नहीं है। ... उठा रहे हैं।

लेकिन वास्तविकता यह है ... सारी बिन्दुएँ सर्वथा उचित हैं ... भी उतना ही दम है जितना ... कभी भी इस पर लड़ाई लड़ी जा ... है और न्यायालय से विजय ली जा ... है। यह सिद्ध किया जा सकता है ... आर्थिक शोषण का छल करना ही ... का उद्देश्य है।

दाभोल का राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिए

समस्या की जड़ में दाभोल का महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड के साथ हुआ बिजली खरीद का समझौता है। इस समझौते की शर्तें दाभोल के पक्ष में है। इन शर्तों का खुलासा महाराष्ट्र सरकार द्वारा गठित गोडबोले कमेटी ने अपनी रपट में किया है। समझौते के अनुसार दाभोल द्वारा उत्पादित बिजली को महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड चौबीसों घंटा खरीदेगा।

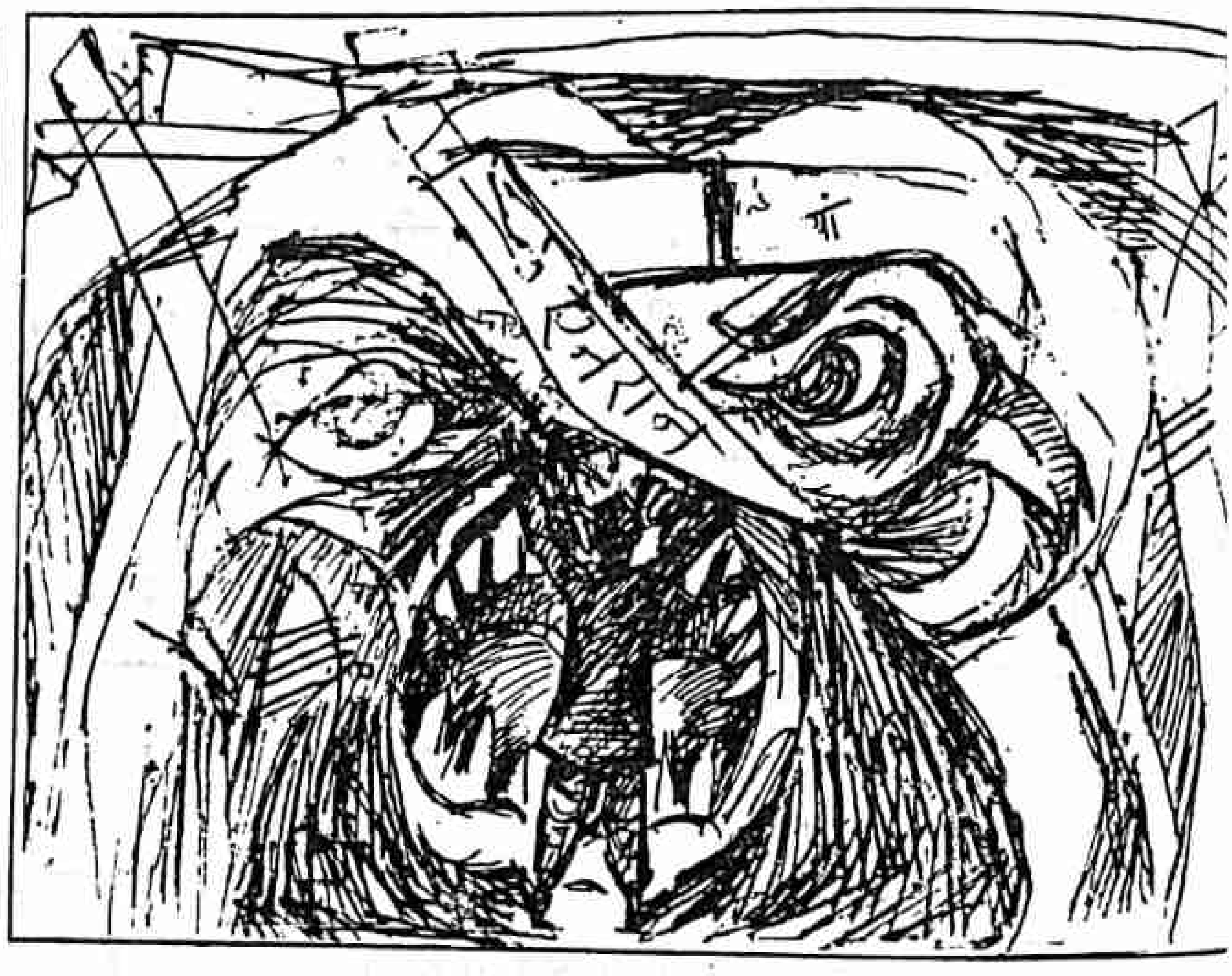

दाभोल पावर कंपनी ने महाराष्ट्र सरकार का लगभग दिवालिया निकाल दिया है। मुफ्त के डॉलर को आकर्षित करने की ललक का यही नतीजा है। दाभोल की बिजली बहुत महंगी पड़ रही है। महाराष्ट्र सरकार वार्ता करके दाभोल से बिजली के दाम कम कराना चाहती है। परंतु यह रणनीति सफल नहीं होगी। हाथ में 'आए लड्डू को दाभोल अनायास ही क्यों छोड़ेगी? इस समस्या का एकमात्र हल यह है कि दाभोल का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए। ऐसा करके महाराष्ट्र सरकार देश को कह सकेगी कि उसने बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सामना करने का साहस दिखाया है। विदेशी निवेशक अवश्य भागेंगे परंतु वह भी देशहित में ही होगा। महाराष्ट्र सरकार केवल महाराष्ट्र को नहीं अपितु पूरे देश को बचाने में सफल होगी।

समस्या की जड़ में दाभोल का महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड के साथ हुआ बिजली खरीद का समझौता है। इस समझौते ... शर्तें दाभोल के पक्ष में है। इन शर्तों ... खुलासा महाराष्ट्र सरकार द्वारा ग... गोडबोले कमेटी ने अपनी रपट में कि... है। समझौते के अनुसार दाभोल द... उत्पादित बिजली को महाराष्ट्र विद्युत बो... चौबीसों घंटा खरीदेगा। वास्तव में बोर्ड ... बिजली की आवश्यकता केवल १५ घ... है। शेष ९ घंटों के लिए दाभोल से बिज... न खरीदने पर भी बोर्ड को पेमेंट कर...

पड़ रहा है। वर्तमान में लगभग १०० करोड़ रुपए प्रतिमाह बिजली न खरीदने पर भी अदा करना पड़ रहा है। दूसरी समस्या यह है कि दाभोल की मध्यस्तता से विद्युत बोर्ड ने एक करार पश्चिमी एशिया की तेल सप्लाई कंपनी के साथ किया है। इस समझौते के अंतर्गत यदि तय की गई मात्रा में तेल नहीं खरीदा गया तो भी उसका भुगतान करना होगा। दाभोल द्वारा बिजली उत्पादन के लिए तेल खरीद कर उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी भी विद्युत बोर्ड की है। तीसरी समस्या यह है कि सभी भुगतान का निर्धारण डॉलर में किया गया है, न कि रुपयों में। जैसे-जैसे रुपए का मूल्य गिर रहा है वैसे-वैसे भुगतान की मात्रा स्वयं बढ़ती जा रही है। रुपये के मूल्य का जोखिम पूर्णतया विद्युत बोर्ड का है। और भी इसी प्रकार की समस्याएँ है जिनके कारण भारी मात्रा में पेमेंट करना पड़ रहा है और महाराष्ट्र कंगाल होता जा रहा है। दाभोल कंपनी के हाथ में लड्डू हैं।

ऐसा घटिया समझौता कैसे संपन्न हुआ? गोडबोले कमेटी ने इशारा किया है कि यह भ्रष्टाचार का मामला हो सकता है। लिखा है कि "दाभोल के पक्षधर लोगों द्वारा हर समय पर हर अवसर का लाभ उठाया जाना इस बात का संदेह पैदा करता है कि निर्णयों को दाभोल के पक्ष में बदलने का एक संगठित प्रयास हर स्तर पर किया गया है। सरकार कानूनी तौर पर ऐसे समझौते को रद्द करने अथवा परिवर्तित करने के लिए कंट्रैक्ट एक्त के तहत कार्यवाही कर सकती है।" यद्यपि यह दृष्टिकोण कमेटी के सब सदस्यों का नहीं था फिर भी यह दर्शाता है कि दाल में कुछ काला है। ऐसा घटिया समझौता कराने में नार्थ ब्लॉक की विशेष भूमिका रही है। देश के बिजली कानून के अंतर्गत केंद्रीय बिजली अधिकरण को ऐसी परियोजनाओं को तकनीकी तथा आर्थिक स्वीकृति देनी होती है। परंतु दाभोल के मामले में यह स्वीकृति वित्त सचिव ने स्वयं दे दी। दाभोल द्वारा विदेशी निवेश का प्रस्ताव वित्त मंत्रालय द्वारा गठित बोर्ड के सामने रखा गया था। बोर्ड को वित्त सचिव ने बताया कि "बिजली के मूल्य को देखा गया है और पाया गया है कि वह महाराष्ट्र में लग रहे दूसरी परियोजनाओं के समकक्ष है।" वित्त सचिव के इस कथन को ऊर्जा सचिव ने केंद्रीय बिजली अधिकरण को भेज दिया। अधिकरण ने वित्त सचिव की इस टिप्पणी मात्र के आधार पर परियोजना को आर्थिक दृष्टि से स्वीकृति दे दी।

महाराष्ट्र सरकार कुएँ और खाई के बीच फँसी हुई है। यदि वह वर्तमान खरीद समझौते को थोड़े बहुत संशोधन करने के बाद भी लागू करती है तो भी उसे घाटा ही देना पड़ेगा। यदि वह समझौते को रद्द करती है तो उसे भारी मात्रा में हर्जाना देना होगा। ऊपर से केंद्र सरकार ने विदेशी बैंकों को गारंटी दे रखी हैं।

इसी अवधि में योजना आयोग तथा विश्व बैंक ने भी आपत्ति उठाई थी। केंद्रीय बिजली अधिकरण की मीटिंग में योजना आयोग के सदस्य ने कहा कि दाभोल परियोजना स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि ताप विद्युत घरों से मिल रही सस्ती बिजली के स्थान पर दाभोल द्वारा आयातित तेल से उत्पादित महंगी बिजली खरीदी जाए। इन आपत्तियों के बावजूद केंद्रीय बिजली अधिकरण को वित्त सचिव की टिप्पणी हीं सही लेगी। महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड अथवा उस समय की, महाराष्ट्र सरकार को भी विदेशी निवेश का चस्का लगा हुआ था। उन्होंने इन सब हिदायतों के बावजूद दाभोल से महंगी बिजली खरीदने का करार कर डाला।

दाभोल परियोजना प्रारंभ में कांग्रेस सरकार द्वारा स्वीकार की गई थी। भाजपा-सेना सरकार ने सत्ता सम्हालने के बाद समझौते पर पुनर्विचार के लिए एक समिति बनाई थी। इस समिति को उपरोक्त सभी समस्याओं की जानकारी थी परंतु उसने भी इन पर गौर नहीं किया गया। समझौते में मामूली सुधार किए गए परंतु मूल समस्याओं को ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया।

इन घटनाक्रम से प्रतीत होता है कि दाभोल के साथ बिजली खरीद समझौते में भ्रष्टाचार का मामला हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वित्त सचिव तथा महाराष्ट्र की काँग्रेस एवं भाजपा सरकारें, सभी इसमें लिप्त थी। देश के कानून के अंतर्गत यदि कोई समझौता गलत तरीके से अथवा जनहित के विरुद्ध है तो उसे रद्द किया जा सकता है। यद्यपि इसकी न्यायिक लड़ाई लम्बी होगी फिर भी अब महाराष्ट्र सरकार को हिम्मत जुटा कर यह कदम उठाना चाहिए।

इस परिस्थिति से निपटने के जो सुझाव अब तक दिए गए है वे कारगर नहीं है। महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड ने सुझाव दिया है कि दाभोल द्वारा उत्पादित अतिरिक्त बिजली दूसरे राज्यों अथवा बड़े उपभोक्ताओं को बेच दिया जाए। परंतु जो हाल महाराष्ट्र का है वही दूसरे राज्यों का। वर्तमान में महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड २.१२ रुपए प्रति यूनिट में बिजली का उत्पादन कर रहा है। दाभोल की बिजली का मूल्य लगभग ६ से ८ रुपए तक बैठ रहा है। इतनी महंगी बिजली दूसरे उपभोक्ता भी नहीं खरीदेंगे।

गोडबोले कमेटी ने बिजली खरीद समझौते में संशोधन के कई सुझाव दिए हैं। इन सुझावों के प्रति दाभोल पावर कंपनी उदासीन है। होना भी चाहिए। इन सुझावों से बिजली उत्पादन का वास्तविक खर्च

Scanned with OKEN Scanner

नहीं घटता है। ये सुझाव मुख्यत: बिजली के मूल्य की गणित करने संबंधी है। दाभोल को इन सुझावों को स्वीकार करके केवल नुकसान ही नुकसान है। बदले में देने के लिए महाराष्ट्र के पास कुछ नहीं है। हाथ में आए लड्डू दाभोल यूँ ही नहीं छोड़ने वाली है।

महाराष्ट्र सरकार कुएँ और खाई के बीच फँसी हुई है। यदि वह वर्तमान खरीद समझौते को थोड़े बहुत संशोधन करने के बाद भी लागू करती है तो भी उसे घाटा ही देना पड़ेगा। यदि वह समझौते को रद्द करती है तो उसे भारी मात्रा में हर्जाना देना होगा। ऊपर से केंद्र सरकार ने विदेशी बैंकों को गारंटी दे रखी हैं। समझौता रद्द करने पर केंद्र सरकार को इन बैंकों को पेमेंट करना होगा जो वह महाराष्ट्र सरकार को दिए जाने वाले अनुदान से काट लेगी। और यह लगभग असंभव है कि दाभोल कंपनी अपनी बिजली के मूल्य को ६-८ रुपए से घटाकर २-३ रुपए पर ले आए। इसलिए महाराष्ट्र सरकार से न तो दाभोल गिटते बन रहा है न उगलते बन रहा है।

समस्या का संभवत: समाधान यह है कि महाराष्ट्र सरकार दाभोल कंपनी का राष्ट्रीयकरण कर दे। जिस प्रकार केंद्र तथा राज्य सरकारों ने बैंकों तथा कोयला एवं चीनी कारखानों का साठ के दशक में राष्ट्रीयकरण कर दिया था उसी तरह दाभोल का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए। तब समस्या बिजली खरीद समझौते के अनुपालन की नहीं रह जाएगी। यह समझौता महाराष्ट्र सरकार द्वारा अधिग्रहित दाभोल तथा विद्युत बोर्ड के बीच रह जाएगा और इसके पुनर्विचार में दाभोल के मूल मालिक एनरॉन का कोई हस्तक्षेप नहीं हो सकेगा। तब प्रश्न यह उत्पन्न होगा कि एनरॉन को दाभोल के राष्ट्रीयकरण का कितना मुआवजा दिया जाए। इस रकम को तय करने के लिए महाराष्ट्र सरकार पर कोई समझौता लागू नहीं होगा। इस रकम को अंतिम रूप से तय करने में हमारे न्यायालयों में १०-१२ वर्ष लगना सामान्य

दाभोल के राष्ट्रीयकरण से महाराष्ट्र बच जाएगा। समस्या उत्पन्न होगी नार्थ ब्लॉक के लिए। ध्यान रहे कि महाराष्ट्र सरकार को राष्ट्रीयकरण के लिए केंद्र सरकार की अनुमति नहीं चाहिए। केंद्र सरकार ने पूरी ताकत विदेशी निवेश आकर्षित करने में लगा रखी है। डॉलरों को प्राप्त करने के लिए दाभोल सरीखे उल्टे-सीधे काम नित किए जा रहे है। नार्थ ब्लॉक के अधिकारियों के बहू-बेटे उन्हीं विदेशी निवेशकों के लिए काम कर रहे हैं जो देश को चूना लगा रहे हैं।

बात है। इस प्रकार महाराष्ट्र सरकार इस संकट से उबर सकती हैं।

दाभोल के राष्ट्रीयकरण से महाराष्ट्र बच जाएगा। समस्या उत्पन्न होगी नार्थ ब्लॉक के लिए। ध्यान रहे कि महाराष्ट्र सरकार को राष्ट्रीयकरण के लिए केंद्र सरकार की अनुमति नहीं चाहिए। केंद्र सरकार ने पूरी ताकत विदेशी निवेश आकर्षित करने में लगा रखी है। डॉलरों को प्राप्त करने के लिए दाभोल सरीखे उल्टे-सीधे काम नित किए जा रहे है। नार्थ ब्लॉक के अधिकारियों के बहू बेटे उन्हीं विदेशी निवेशकों के लिए काम कर रहे हैं

जो देश को चूना लगा रहे हैं। राष्ट्र
राष्ट्रीयकरण करने से विदेशी निवे
तरह प्रभावित होगा। मैं समझता हूँ कि
देश के लिए लाभकारी होगा।
महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड २.१२ रुपए में
उत्पादन कर रही है तो ८ रुपए के
कंपनियों को विद्युत उत्पादन के
आमंत्रित करने का क्या औचित्य
आर्थिक सुधारों की सही परिभाषा
कि विद्युत बोर्ड द्वारा २.१२ रु
उत्पादित बिजली को निजी हाथों में
कर १.५० रुपए में उत्पादित किया
इसके लिए बोर्ड के बिजली घरों
निजीकरण किया जाता तो उचित था।
नार्थ ब्लॉक को मुफ्तखारी की आद
गई है। हमारे प्रधानमंत्री एवं वित्तमंत्री
चिंता यह है कि यदि विदेशी निवेश
डॉलर लाना बंद कर दिए तो सरका
बढ़ते खर्च का भंडाफोड़ हो जा
इसलिए नार्थ ब्लॉक दाभोल का
समर्थन कर रहा है। यदि महाराष्ट्र स
दाभोल का राष्ट्रीयकरण कर देती
कॉंग्रेस देश को कह सकेगी कि भ
की केंद्र सरकार द्वारा विदेशी निवेशक
सामने घुटने टेके जाने का वह विरोध
रही है। कॉंग्रेस अपने को राष्ट्रवादी
सकेगी। गोडबोले कमेटी का धन्यवा
कि इन तमाम तथ्यों को उसने उ
किया है। आशा यही की जा सकती है
महाराष्ट्र सरकार दाभोल का राष्ट्रीय
करने का साहस जुटा सकेगी और महा
के साथ-साथ पूरे देश को दाभोल
विदेशी निवेशकों के फन्दे से बचा
जाएगी।

डॉ० भरत झुनझुनव

मशीनें श्रम की कठोरता को घटायें, उत्पादकता को बढ़ायें, मगर वे श्रम का अवसर न छीनें, न आदमी को अपना पुर्जा बना पायें। पृथ्वी का दोहन विवेक पूर्वक हो, प्रकृति से द्रोह न किया जाये। दरिद्रता, दैन्य व अत्याचार को मिटाने का वीरावेश भड़के परंतु क्रूरता बहादुरी का मुखौटा पहनकर न घूमें। समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व में परस्पराश्रय हों, परस्पर विरोधी नहीं।

– दत्तोपंत ठेंगड़ी

Scanned with OKEN Scanner

पेटेंट कानून : विकसित देशों का आधिपत्य

[नई दिल्ली में १५-१६ मार्च, १९९० ई० को संपन्न हुए तीसरे पेटेंट सम्मेलन में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के पूर्व राज्यमंत्री और अब भारत के सम्मानीय (Honourable) राष्ट्रपति श्री के०आर० नारायणन के अँगरेजी में दिए हुए अभिभाषण का हिन्दी भाषांतरण स्वदेशी पत्रिका के पाठकों के लिए प्रकाशित किया जा रहा है – सं.]

■ के.आर. नारायणन

बौद्धिक 'सम्पदा अधिकार संबंधी विषय आज आम जनता के लिए बहुत महत्वपूर्ण और साथ ही गूढ़ भी है, परन्तु वास्तव में यह ऐसा विषय है जो पूरे विश्व के विकास और जीवन स्तर को प्रभावित करता है। यह विशेषकर उन देशों के लिए महत्वपूर्ण है जो विकासशील हैं।

वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक ज्ञान या जानकारी का विनिमय करना तो पुरानी कहानी हो चुकी है। आज विश्व के विकसित देशों ने विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में अपना प्रभुत्व बना रखा है। उन्होंने इसे निरर्थक रूप से प्राप्त नहीं किया, बल्कि ये तो ज्ञान के विनिमय की निरंतर प्रक्रिया है जिसने विश्व में कई शताब्दियों से अपना स्थान बना रखा है। हम जानते हैं कि वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान एशियाई देशों; जैसे – चीन, भारत और अरब आदि से ही निकलकर पश्चिमी देशों में औद्योगिकीकरण की स्थापना कर रहा है। यह कोई दूरवर्ती बात नहीं है। इस ज्ञान ने आज विश्व में अपनी जगह बना ली है। सच पूछिए तो आज यह ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में 'तीसरा विश्व' कहा जाने लगा। आज की वैज्ञानिक तकनीक पूर्वी देशों से पश्चिमी देशों की ओर अग्रसर हो रही है।

कुछ वर्षों पहले की बात है मेरे अनुमान से सन् १९५३ का ही समय था, अमेरिका की एक औषधि निर्माण की कंपनी ने लेडरले लेबोरटी के नाम से भारत में एक शाखा खोली। कंपनी का उद्घाटन संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि मिस्टर जार्ज ऐवेन ने किया। उन्होंने एक भारतीय नौजवान डॉ. सुब्बाराव की कहानी सुनाई जो भारत से १९२३ ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका गए। उन्होंने पहले हार्वर्ड में काम किया था, उसके बाद लेडरले लेबोरट्री में काम करना आरंभ किया। वहाँ उन्होंने एयुरोमाइसीन की खोज की। मैं उस कहानी का स्मरण करते हुए यह बात कहना चाहूँगा कि भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ कई शताब्दियों से औषधियाँ और जड़ी-बूटियाँ प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होती आ रही है। इतना ही नहीं पूरे विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ औषधियाँ और जड़ी-बूटियाँ अधिकाधिक उपलब्ध हैं।

मैं इस बात की चर्चा इसलिए नहीं कर रहा कि यह तथ्य ऐतिहासिक या नैतिक है। यह बात सिर्फ इसलिए चर्चा की जा रही है कि विश्व के विकसित देश इस तकनीक को विकासशील देशों में लागू करें और शायद वे ऐसा कर भी रहे हैं। विकसित देश हमारे देश से पहले भी वैज्ञानिक तकनीक ग्रहण करते आए थे और अभी भी कर रहे हैं।

आज ९९% पेटेंट ऐसे हैं जो विकसित देशों के हाथों में है और इसमें मात्र १% भाग ही विकासशील देशों का है। यह एक भयावह स्थिति है कि पेटेंट का बोलबाला पश्चिमी देशों में बढ़ता ही जा रहा है।

मेरे विचार से अब हमें पेटेंट और बौद्धिक अधिकारों पर चर्चा करनी चाहिए। कुछ लोग इसे तथ्यात्मक रूप से देखते है और कुछ सोचते हैं कि यह तो विकसित देशों का रचा हुआ कोलाहल है। सच बात तो यह है कि आज ९९% पेटेंट ऐसे हैं जो विकसित देशों के हाथों में है और इसमें मात्र १% भाग ही विकासशील देशों का है। यह एक भयावह स्थिति है कि पेटेंट का बोलबाला पश्चिमी देशों में बढ़ता ही जा रहा है।

हमें इन कारणों को पता करने से पहले विज्ञान और तकनीक की भूमिका के बारे में विचार करना होगा और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और विकास के संबंध में भी। पूरे विश्व में आज तकनीक एक निर्णायक (जटिल) कारक बन चुकी है, और व्यापार में इसकी एक अहम् भूमिका बन चुकी है, विशेषकर आधुनिक और बड़े-बड़े राष्ट्रों में। मैं यह सोचता हूँ कि भयभीत होने की बात तो भविष्य की कार्य-विवरणिका को लेकर होना चाहिए, जहाँ यह तय करना है कि तीसरे विश्व में बाजार कैसे विकसित किया जाए। दूसरे देश तो भविष्य को ध्यान में रखकर अपना बाजार

Scanned with OKEN Scanner

स्थापित करते हैं और अपने उत्पादों को आरक्षित करके रखते हैं ताकि तीसरे विश्व में शामिल हो सकें। अब ऐसा लगता है कि औद्योगिक देशों ने पेटेंट और बौद्धिक अधिकारों के बल पर अपना दबदबा बना लिया है।

आज विकासशील देश ऐसी अवस्था में हैं जहाँ आज से १५-२० वर्ष पूर्व विकसित देश हुआ करते थे। ये विकसित देश पेटेंट और बौद्धिक अधिकारों के संबंध में अपने पेटेंट और जानकारियों को संरक्षित कर चुके थे। ये विकसित देश आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण के समय से ऐसा करते आ रहे हैं। ये देश चाहते हैं कि ऐसा अवसर विकासशील देशों को न मिले, जिन देशों को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विकास, उत्पादन, वैज्ञानिक और तकनीकी तथा निर्यात प्रणालियों के लिए संरक्षण की आवश्यकता है।

हम लोग हमेशा अतीत को ध्यान में रखकर नहीं कर सकते हैं क्योंकि लोग वर्तमान आवश्यकताओं और उम्मीदों से प्रभावित होता है। इसीलिए हमारे लिए ये जरूरी है कि हम इन तथ्यों का सामना करें और इन तथ्यों का सामना करने के लिए हमें सबसे पहले दक्षिण की ओर ध्यान देना है। क्योंकि दक्षिणी देशों की जरूरतों को संरक्षित करने के लिए एकजुट होना जरूरी है।

हमें इस क्षेत्र में राष्ट्रीय नीतियों और रण-कौशल के समन्वय की आवश्यकता है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि विकसित देश तीसरे विश्व पर न केवल अपना सुविचारित दबाव डाल रहे हैं बल्कि तीसरे विश्व के चुने हुए देशों पर अपना प्रभुत्व बनाए हुए हैं। यह कोई आसान काम नहीं कि इस प्रकार के दबाव से तीसरे विश्व के देश छुटकारा पा सकें अथवा उनका प्रतिरोध कर सकें। तथापि हम अपने देश की व्यावसायिक शक्तियों का आकलन कम करके ही चलते हैं क्योंकि बाहरी शक्तियों का दबाव हमारी व्यापारिक वस्तुओं पर कभी भी पड़ सकता है। वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी के मामले में हमारा देश भी तीसरे विश्व के देशों से कम नहीं है। यदि हमारा देश अपनी क्षमता को समझता है तो हमें किसी प्रकार की प्रतिहिंसा का मुकाबला करने में कोई मुश्किल नहीं आएगी। लोग यह जानते हैं कि विकसित देशों के दबाव में आकार विकासशील विश्व का भी पतन हो सकता है। परंतु, इस प्रकार का पतन हम व्यावहारिक नीतियों और जीवन स्तर में नहीं देख सकते हैं। इसीलिए हम अपनी कार्य-कुशलता के साथ देश में उपलब्ध साधनों, उपकरणों आदि का इस प्रकार उपयोग करते हैं ताकि विश्व के विकसित देशों के साथ अपने संबंधों का संरक्षण हो सकें और साथ ही अपने राष्ट्रीय हितों का भी ध्यान रख सकें। मेरा कहने का यह मतलब नहीं है कि हम अपने देश को विश्व के औद्योगिक देशों से अलग रखकर ही मुकाबला करे, और ये भी संभव नहीं है कि विश्व के बड़े-बड़े औद्योगिक देश भी हमारे सहयोग के बिना अकेले ही मुकाबला कर सकते है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार के तहत स्थाई और उचित अंतर्राष्ट्रीय संबंध के लिए परस्परावलम्बी उद्देश्यों को आगे रखना होगा।

अब मैं आप लोगों से पेटेंट प्रणाली के गुणों के बारे में चर्चा करना चाहूँगा और इसमें पेटेंट अधिनियम पर भी विचार किया जाएगा। यह अधिनियम हमारे देश में और अन्य विकासशील देशों में भी विद्यमान है। हमारा पहला उद्देश्य है कि देश की नीति निर्माणकर्ताओं और सरकार को प्रभावित करने वाले लोगों की आँखें खुल जाएँ। सबसे पहले हमें यह समझना जरूरी है कि किस प्रकार इन मुद्दों के साथ समझौता किया जाए जिससे हमारे हितों पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़े। हमारी बड़ाई किन्हीं सिद्धांतों को लेकर नहीं है बल्कि उन निश्चित आधारभूत हितों के लिए है जिनका हमारे विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। यह सच है कि जो व्यक्ति आविष्कार करते हैं उन्हें इसके लिए ईनाम दिया जाता है। परंतु, मैं सोचता हूँ कि ये खोजें मात्र ईनाम प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं होती हैं बल्कि ये तो एक बौद्धिक आविष्कार और प्रबल इच्छा ही है जो मनुष्य के हितों के लिए कार्य करती है। परंतु इन खोजों के लिए आज के आविष्कारों को प्रेरणा और प्रोत्साहन की इतनी माँग नहीं, जितनी की निवेशकों की है। इसीलिए अन्वेषणों के लिए निवेश की आवश्यकता बढ़ती ही जा रही है। पहली आवश्यकता तो इन अन्वेषणों को बरकरार रखने के लिए है और दूसरी इनसे प्राप्त उपलब्धियों का सदुपयोग करने के लिए। दूसरे शब्दों में आज हम जो प्राप्त कर रहे हैं वह वैज्ञानिक खोजों और तकनीकी प्रयासों का शक्तिशाली पूँजीवाद उपक्रमों के रूप परिवर्तन है। अर्थात् हमारे आविष्कार भी पूँजीवाद उपक्रमों के रूप स्थापित हो चुके हैं। अब हम इस प्रकार के मुद्दों को वहन नहीं कर सकते हैं क्योंकि हम जानते हैं कि हमारा भविष्य, हमारा विकास और हमारा कल्याण विज्ञान और तकनीकी की नए-नए आयामों (जानकारियों) पर निर्भर करता है; विशेषरूप से आर्थिक प्रक्रिया में। सच पूछिए तो विकासशील देशों को यदि उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो हमें विज्ञान और तकनीक का अनुप्रयोग करना होगा।

बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित हमारे पास कुछ सरल नियम भी हैं, परंतु फिर भी हम बौद्धिक अधिकारों का संरक्षण नहीं कर पाते हैं, खासतौर पर औद्योगिक वैज्ञानिक और तकनीकी तथा आर्थिक उन्नति के लिए।

हमारे पास दो प्रश्न ऐसे हैं जिनमें संतुलन बनाना देश के लिए जरूरी है। पहला है आविष्कारकों के अधिकार और दूसरा विकास के लिए समाज की आवश्यकता। मुझे विश्वास है कि विश्व के बड़े-बड़े औद्योगिक देश भी इस बात को मान्यता देंगे क्योंकि यदि वे ऐसा करते हैं तो इसमें उनका अपना हित भी निहित है। जिस देश में कोई विकास या वृद्धि नहीं होती है वहाँ पर ही भविष्य के लिए बाजार और

Scanned with OKEN Scanner

संसाधनों का विस्तार किया जाता है, ताकि अर्थव्यवस्था को एक शक्ति उपलब्ध हो सके। इसीलिए प्रत्येक विकसित देश का यह उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वे आर्थिक विकास के लिए नई-नई तकनीक और वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करें क्योंकि यही उपलब्धियाँ पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था को एक गति प्रदान करेगी जिससे विश्व में व्यापार भी बढ़ेगा। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी देश को व्यापार के लिए (गैट) के अधीन होकर भी कार्य करना पड़ता है परंतु कुछ मुद्दे ऐसे भी हैं जहाँ हम समझौता नहीं कर सकते हैं। हमें अपनी सरकार और व्यापारियों को यह भी बताना है कि पेटेंट अधिकारों के मामले में किसी भी प्रकार का समझौता न तो हमारे अपने हित में है और न ही देश के हित में। इससे संबंधित लोग इस समझौते को स्वीकार भी नहीं करेंगे। जैसा कि मैंने पहले बताया था कि लोगों की मानसिकता को उजागार करना अति आवश्यक है ताकि वे अपने हितों की रक्षा स्वयं ही कर सकें। और यह किसी भी विकासशील देश के लिए महत्वपूर्ण बात है।

दक्षिण की ओर से एक या दो देश मिलकर किसी भी जटिल समस्या का समाधान नहीं कर सकते है जब तक कि दक्षिण के बहुतायत देश मिलकर विकसित देशों के साथ व्यापार स्थापित न करें। हम जानते है कि शायद ही कोई देश हो, जो अकेले ही आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं का सामना कर ले। परंतु, यदि आपस में एक-दूसरे के सहयोग से यही कार्य किया जाए तो मुश्किलें और भी आसान हो जाती है।

भारत में वाद-विवाद का जो विषय चल रहा है वो उत्पादों और पेटेंट प्रक्रिया के बीच है। हम जानते हैं कि विज्ञान और तकनीक आज इतनी बढ़ चुकी है कि कोई भी उत्पाद विभिन्न आयामों से आसानी से गुज़र जाता है। आज वैज्ञानिक और तकनीकी प्रणाली का सबसे रचनात्मक पहलू यह है कि उत्पादन को कैसे बढ़ाया जाए। दूसरी ओर यदि हम चाहें कि पेटेंट की प्रक्रिया को स्वीकार न करें और केवल वही उत्पाद बनाएँ जो पेटेंट प्रणाली के अधीन हैं तो हमारे वैज्ञानिक खोजों के अवसर अवरुद्ध हो जाएँगे। हमारे वैज्ञानिकों और आविष्कारकों के लिए यह मुश्किल हो जाएगा कि वे उत्पादन के नए-नए आयामों का विस्तार करें। इस प्रकार ये प्रभाव हमारी वैज्ञानिक उन्नति को भी प्रभावित करेगा।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि पेटेंट का केवल १% ही विकासशील देशों को दिया गया परंतु वे पेटेंट जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों को दिए हैं क्या वे वास्तव में विकासशील देशों में कार्यरत है? हम जानते हैं कि डॉ. सुरेन्द्र पटेल ने इस बात को सिद्ध कर दिया था कि जिन देशों में पेटेंट का बोलबाला है वे देश पूरी तरह से विकासशील देशों में अपना संचालन नहीं कर रहे हैं। पेटेंट आज निर्यात उत्पादों के लिए मशीनीकरण का रूप ले चुका है और ये प्रक्रिया विकसित देशों से विकासशील देशों में अग्रसर है। ये विकसित देश विकासशील देशों के बाजारों पर प्रभुत्व बना रहे हैं। इस प्रकार से पेटेंट प्रणाली को विकासशील देशों में लागू करने का सही तरीका नहीं है। इसका यही दुष्परिणाम हो रहा है कि ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारे देश में आकर और कानूनी अधिकार प्राप्त करके उत्पादन कर रही हैं। जिससे न तो हमारे देश के लोगों को रोजगार मिल रहा है और न ही ये कंपनियाँ किसी भी प्रकार का निवेश करती है। परिणामस्वरूप पेटेंट प्रणाली एकाधिकार के रूप में स्थापित हो जाती है।

किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि हम लोग केवल अधिकारों और तथ्यों के बीच ही सिमट कर रह जाते हैं। हम जानते हैं कि १५ या २० वर्षों की अवधि पेटेंट के लिए बहुत बड़ी अवधि होती है क्योंकि आज तकनीकी बहुत तीव्र गति से आगे बढ़ रही है। यदि यही लंबी अवधि के लिए पेटेंट स्वीकार्य रहा तो इसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से वैज्ञानिक अनुसंधानों पर पड़ेगा। भारत में बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ विधमान हैं। यदि पेटेंट अवधि २० वर्षों के लिए ही जाएगी तो हमारे अन्वेषण केंद्र और अनुसंधानों की कार्य-क्षमता सीमित हो जाएगी और वैज्ञानिक जो कार्य-क्षेत्र में नवीनता लाने की क्षमता रखते हैं, उनको घुटन महसूस होने लगेगी। इसीलिए यह स्पष्ट है कि देश की अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के अनुबंध स्वीकार्य नहीं होंगे।

बड़े सम्मान के साथ मैं एक बार आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहूँगा वो है हमारे औषधालयों से संबंधित खासतौर पर दवाईयों को लेकर। जैसा कि आप जानते हैं कि यही एक ऐसा क्षेत्र है जिसका अत्यधिक दबाव हमारी अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है। हमारा देश अभी भी गरीबी रेखा के नीचे चल रहा है। ऐसा इसलिए भी हो रहा है क्योंकि हम जानते हैं कि औषधालयों और दवाईयों पर पूरी तरह से आज बहुराष्ट्रीय देशों का आधिपत्य है। आज यह प्रश्न बनकर रह गया है कि क्या हम अपने देश के लोगों के स्वास्थ्य का संरक्षण कर पाएँगे?

आज यहाँ किए गए इस सम्मेलन का मैं स्वागत करता हूँ यह कोई भारतीय सम्मेलन नहीं है बल्कि यहाँ तो तीसरे विश्व के विभिन्न देशों के प्रतिनिधि भी एकत्र हुए हैं। यह सम्मेलन देश की आवश्यकता और एकता के लिए किया गया है। हमें चाहिए कि एक दूसरे को सहयोग दें, एक दूसरे को प्रोत्साहन दें। मुझे ऐसा लगता है कि यदि इसी प्रकार से देश में एकता का प्रदर्शन चलता रहा तो एक दिन विकसित देश भी हमारे अधिकारों, बौद्धिक अधिकारों और आवश्यकताओं को 'नकार' नहीं सकते। ■

भाषान्तरण : सुषमा शर्मा

Scanned with OKEN Scanner

लेख

विश्व व्यापार संगठन के साथ हुए कृषि-अनुबंध पर भारत का प्रस्ताव

■ बाबा साहब तकवाले

भारत सरकार ने कृषि अनुबंध पर अपना प्रस्ताव पेश कर दिया है। हमारे देश में विचारकर्ता दो अलग-अलग पक्षों में बँटे हुए है। एक पक्ष चाहता है कि आर्थिक सुधार के लिए विश्व व्यापार संगठन के साथ अनुबंध को कायम रखें। परंतु दूसरा पक्ष इसके विपरीप अवस्था में है। मंत्रालय संबंधी मतों के अनुसार पहले खण्ड के विचार के लिए सरकारी सहायता की आवश्यकता पड़ती है। यह स्वाभाविक है कि यदि किसी मत का विरोध किया जाए तो विकसित देश धीरे-धीरे विधान का सहारा लेकर उस पर नियंत्रण करना आरंभ कर देते हैं। हमारी लड़ाई आर्थिक प्रणाली और कानूनी व्यवस्था में परिवर्तन लाने की है जिससे कि इस देश को विदेशी आक्रमण से बचाया जा सके।

उपर्युक्त विवेचन में, कृषि-अनुबंध पर बातचीत के लिए भारत सरकार द्वारा दिए गए प्रस्ताव पर विचार करना रोचक है।

शुरू से ही मैं भारत सरकार को बधाई देता हूँ जिसने इस प्रकार का श्रेष्ठ प्रस्ताव रखा। यह कोई विवादास्पद बात नहीं है कि - ''अनुबंध के अंतर्गत की गई बातचीत एक प्रकार से सुधार प्रक्रिया की निरंतरता है। (कृषि-अनुबंध के अनुच्छेद २० के अनुसार)। इस बात को ''गैर-व्यापार संबंध'' पर भी विचार किया जाता है जैसे, खाद्य-सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा को एफ.ए.ओ. (खाद्य और कृषि संगठन) द्वारा परिभाषित किया गया है।

खाद्य सुरक्षा को इन शब्दों में समझाया गया है - ''शारीरिक और आर्थिक सामर्थ्य के लिए सभी लोगों को, किसी भी समय पर पर्याप्त खाद्य की उपलब्धता जिससे कि एक सक्रिय और स्वस्थ जीवन निर्वाह कर सकें।'' खाद्य और कृषि संगठन का यही कहना है कि इस प्रकार के सामर्थ्य में किसी प्रकार का जोखिम नहीं होना चाहिए। इस प्रकार का सामर्थ्य विकासशील देशों के जन-जीवन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। उपर्युक्त व्याख्यानों को पढ़कर निम्नलिखित 'कथ्य' स्वाभाविक रूप से विचारणीय हो जाते हैं :-

(१) खाद्य उपलब्धता; (२) खाद्य-सुलभता; (३) खाद्य उपयोगिता।

इन तीनों संघटकों को तीन शर्तों की आवश्यकता होती है।

१. खाद्य उपलब्धता : घरेलू बाजारों में खाद्यान्नों का पर्याप्त भण्डार।
२. खाद्य सुलभता : उपभोक्ताओं की क्रय-शक्ति।
३. खाद्य उपयोगिता : उपभोक्ताओं का स्वस्थ होना।

यदि देश को उपर्युक्त शर्तों का अनुसरण करना है तो उसे निम्न के बारे में भी विचार करना होगा - (१) बाजार सामर्थ्य, (२) घरेलू सहायता।

एक विकासशील देश में कृषि को कार्यशक्ति का मुख्य विनियोजक माना जाता है। निम्नलिखित सारणी इस बात को स्पष्ट कर देगी।

देश	रोजगार का प्रतिशत
निम्न आय	७०%
मध्यम आय	३०%
उच्च आय	४%

(UNCTAD Report ....)

विभिन्न देशों के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि के भाग को इस प्रकार दर्शाया गया है :-

निम्न आय	३४%
मध्यम आय	८%
उच्च आय	१५%

(OECD ...)

किसी विकासशील देश में, विशेषकर भारत जैसे देश में यदि कृषि रोजगार अवसरों में थोड़ा सा परिवर्तन आता अथवा उत्पादों की कीमत में परिवर्तन आता है तो ऐसी स्थिति एक सामाजिक और आर्थिक समस्या पैदा कर सकती है इसीलिए यह विकासशील देशों के लिए आवश्यक है कि -

१. जिस प्रकार भूमि की उत्पादकता में वृद्धि करें उसी प्रकार कृषि उत्पादों में भी।
२. इस बात पर ध्यान देना कि यदि कृषि प्रक्रिया में किसी प्रकार का परिवर्तन किया जाए तो उससे बेरोजगारी की समस्या न उत्पन्न हो जाए।
३. स्वास्थ्य संबंधी क्रिया-कलापों और योजनाओं का इस प्रकार संचालन करें जिससे कि ग्रामीण जनता का स्वास्थ्य सुधरें।

विकसित देशों में इस प्रकार की समस्याएँ बिल्कुल अलग होती है। ऐसे देशों की सिर्फ कार्य-शक्ति में साम्य स्थापित करना होता है। जोकि औद्योगिक और कृषि संबंधी कार्यों में बहुत कम जुड़ी होती है।

भारत सरकार का प्रस्ताव इस बात को सुस्पष्ट करता है कि ''खाद्य सुरक्षा

Scanned with OKEN Scanner

की प्रासंगिकता न केवल अर्थव्यवस्था से है बल्कि भारत में कृषि से संबंधित एक महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीति से भी है। आज इसे अपनी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक है कि कृषि प्रस्ताव पर विचार करें।

वास्तविक आय का विकासशील देश में उस समय कहलाती है जब उस देश के अधिकाधिक लोग घरेलू कृषि उत्पादन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते है। कई बार ऐसा होता है कि "मुक्त व्यापार नीति" के अनुसार अनेक वस्तुओं का आर्थिक सहायता के रूप में आयात किया जाता है। जैसे - गेहूँ, तिलहन, वनस्पति तेल, चीनी, डेयरी उत्पाद, फल और सब्जियाँ। इन वस्तुओं का "खाद्य सुरक्षा" के महत्वपूर्ण स्थान है।

यह प्रस्ताव विकासशील देशों के शुल्क कटौती का विरोध करता है। इस प्रस्ताव का मत है कि विकसित देशों को आयात-निर्यात शुल्कों में कमी करनी चाहिए जिससे कि व्यापार विकृति को रोका जा सके।

कृषि अनुबंध के प्रारूप की यह प्रस्ताव आलोचना करता है क्योंकि यह अनुबंध केवल विकसित देशों के हितों में दी है। मैं यहाँ इस बात को कहना चाहूँगा कि प्रस्ताव में दिए गए निर्देशों, आयोजनों को पूर्ण रूप से विकासशील विश्व प्रयांग नहीं कर रहा है जबकि विकसित देश ऐसा कर रहे हैं। इसीलिए 'ग्रीन बॉक्स' के अंतर्गत वे सभी अभिपूर्ति होनी चाहिए जिससे कि कृषि विभाग में पूर्ण रूप से विकास हो सके। दूसरी ओर विकासशील देशों द्वारा जो फसलों के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है उसका इस प्रकार उपयोगी किया जाए जिससे उत्पादकता का औसतन स्तर बढ़ाया जा सके।

यह तथ्य स्वीकार्य है कि विकसित देश, सार्वभौमिक रूप से लाभ अर्जित करते है। इस प्रयास में इन चीजों का भी ध्यान रखना है। इस प्रस्ताव के अनुसार हालाँकि आपसी बातचीत भी एक अच्छा अवसर प्रदान करती है जिससे कि पिछले ६० वर्षों में कृषि अनुबंध में जो विसंगति पैदा हो गई थी वो फिर से न दोहराई जाएँ। इसीलिए भारत सरकार का यह इस प्रस्ताव है कि 'खाद्य सुरक्षा' का संविधान में उल्लेख होना चाहिए। इस प्रस्ताव की यह माँग है कि - (१) गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण विकास, ग्रामीण रोजगार और कृषि विविधीकरण के सभी मापदण्डों में कटौती की छूट होनी चाहिए। (२) गरीब किसानों और निम्न आय वर्ग के लोगों को जो 'उत्पाद विशेष' के लिए सहायता दी जाती है वह सहायता ए.एम.एस. के आँकलन से रहित होनी चाहिए। (३) नकारात्मक विशेष उत्पाद सहायता का समायोजन गैर-उत्पाद सहायता के विरुद्ध होना चाहिए। (४) विकास की आवश्यकताओं और अंतरराष्ट्रीय बाजार में व्याप्त विकृतियों पर विचार करना चाहिए। विशेषकर विकासशील देशों में कृषि पर निर्भर जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग। विकासशील देशों को आयात-निर्यात शुल्क पर भी ध्यान देना चाहिए।

इस प्रस्ताव के अंतर्गत विशिष्ट परिस्थितियों में लगाए गए मात्रात्मक प्रतिबंधों को शामिल करना है।

यह देखा गया है कि विकासशील देश अब धीरे-धीरे अपना बाजार बना चुके हैं। यह आशा भी की जाती है कि इन विकासशील देशों के निर्यात भी बढ़ेंगे। UNCTAD (1999) की रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों द्वारा किया गया निर्यात वास्तव गलत साबित हो चुका है। पश्चिमी यूरोप जोकि उस समय का बड़ा आयातकर्ता था। उसने १९९४-९८ के दौरान ०.५% की दर से अपने आयात घटा दिए थे।

दूसरा अन्य आयातकर्ता देश जापान था जिसने भी १९९४-९८ के दौरान आयातों की मात्रा ३% घटा दी थी (जोकि पहले १४.५% थी अब ११.५% ही रह गई है)।

खाद्य और कृषि संगठन (F.A.O.) की रिपोर्ट के अनुसार एक तात्कालिक सर्वेक्षण (अन्वेषण) भी खाद्य-आयातों (Food imports) और निर्यातों में विकासशील देश वृद्धि नहीं कर पाया।

विकसित देश कुछ वस्तुओं पर ही घरेलू सहायता और निर्यात की आर्थिक सहायता प्रदान करते है। इसलिए यह आवश्यक है कि विकसित देशों पर इस बात के लिए दबाव डाला जए जिससे वो आयात-निर्यात शुल्कों की सीमा में कटौती करें और घरेलू सहायता और निर्यात आर्थिक सहायता के लिए बाजार बनाया जाए। जब इस बात पर विचार किया जा रहा था तो इस बात की माँग की जा रही थी कि विकसित देशों द्वारा लगाए शुल्कों से ५०% की कटौती होनी चाहिए।

T.R.Q. (Tarrif Rate Quaota) के दृष्टिकोण से यह प्रस्ताव विकसित देशों के इस रुख की आलोचना करता है। विकसित देशों के आँकड़ों के अनुसार ये देश आर्थिक सहायता को एक जगह से दूसरी जगह भेजते है जिससे इन्हें लाभ अर्जित होता है। जिससे घरेलू सहायता में २३% से लेकर ४३% की वृद्धि हुई है।

डॉ. बृजेश झा के अवलोकन के अनुसार कुछ चुने हुए देश जो कि E.U. के सदस्य हैं 'प्रत्यक्ष भुगतान' की ओर अग्रसर हुए है। इन देशों ने आर्थिक सहायता में अपना हिस्सा घटा दिया है। परंतु 'प्रत्यक्ष भुगतान' को बढ़ावा दिया है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव किसानों की स्थायी सम्पत्तियों पर पड़ता है और उन्हें केवल परिवर्तनशील लागत पर ही काम करना होता है ऐसी स्थिति किसानों को अकुशल बना देती है।

कृषि अनुबंध की पक्षपातपूर्ण और अनौचित्य प्रकृति का वर्णन अनुच्छेद ७.२(b) में किया गया है। इसके अनुसार विकसित देशों को आर्थिक सहायता का ८०% अनुरक्षित करना है। परंतु कम आय वाले देशों को ऐसी स्थिति में 'निषेध' करार दिया गया है (यदि कृषि उत्पादों की कीमटी का १०% भाग ही हैं।)

मुद्रास्फीति की दर और मुद्रा का अवमूल्यांकन ये दो चीजें घरेलू सहायता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रस्ताव

(शेष पृष्ठ ३० पर)

Scanned with OKEN Scanner

हालाँकि कुछ लोगों का तो मानना है कि आर्थिक ताने-बाने का कारवाँ अब मंदी के ऐसे अँधेरे सुरंग में प्रवेश कर रहा है जहाँ से उसे उबारकर पुनः सामान्य पटरी पर ले आना ही एक दुष्कर कार्य होगा। किंतु इससे परे कुछ आशावादी इसे केवल एक अल्पकालिक परिघटना ही बता रहे हैं।

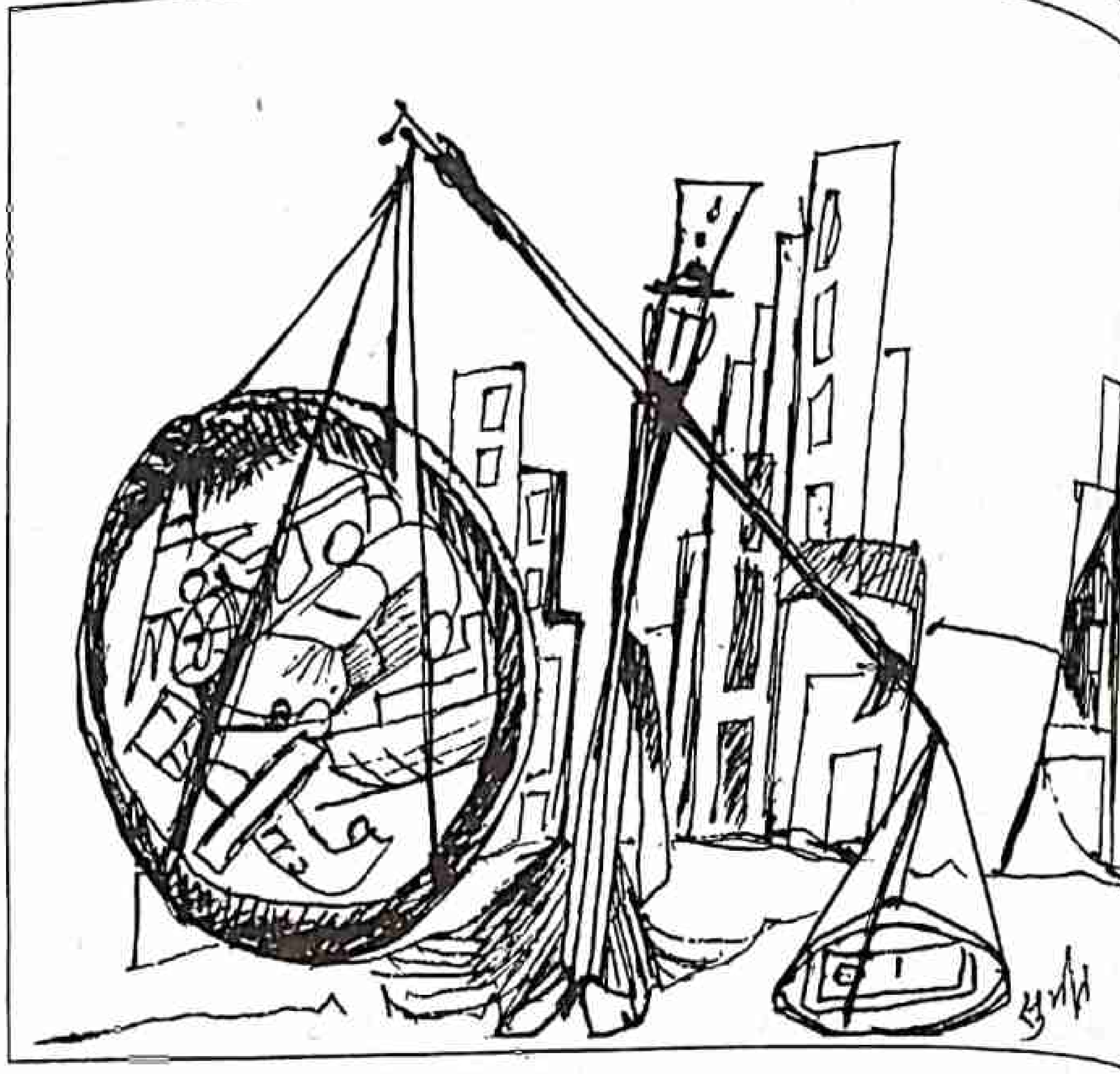

कितनी भयानक होगी यह आर्थिक मंदी

■ अवधेश कुमार

विश्व पटल पर इन दिनों अर्थव्यवस्था की दशा को लेकर अत्यंत ही भयावह तस्वीरें पेश की जा रही हैं। अर्थवेत्ताओं से लेकर सामान्य आर्थिक विश्लेषक तक अब इस निष्कर्ष पर प्रायः एकमत हैं कि समग्र रूप में विश्व की अर्थव्यवस्था इन दिनों मंदी की चपेट में है एवं इस कारण कम से कम आर्थिक विकास की जो गति है – वह काफी धीमी हो जाएगी। हालाँकि कुछ लोगों का तो मानना है कि आर्थिक ताने-बाने का कारवाँ अब मंदी के ऐसे अँधेरे सुरंग में प्रवेश कर रहा है जहाँ से उसे उबारकर पुनः सामान्य पटरी पर ले आना ही एक दुष्कर कार्य होगा। किंतु इससे परे कुछ आशावादी इसे केवल एक अल्पकालिक परिघटना ही बता रहे हैं। इनके मत में वर्त्तमान मंदी का दौर आर्थिक जीवन के सामान्य उतार-चढ़ाव वाले चक्र का ही एक अंश है एवं पूर्व की भाँति परंपरागत उपचार से यह पुनः स्वस्थ होकर स्वाभाविक गति को पकड़ लेगा। बहरहाल, इनमें से कौन-सा मत सही है एवं कौन-सा नहीं या कौन वास्तविकता के ज्यादा करीब है एवं कौन दूर। इन सबकी पड़ताल न करें तब भी इस प्रकार के आशंकाग्रस्त विचारों का सामने आना ही यह सिद्ध करता है कि अर्थव्यवस्था का वैश्विक ढाँचा इन दिनों सहज-सामान्य अवस्था में नहीं है।

अर्थव्यवस्था के संदर्भ की यह डरावनी सच्चाई कई स्तरों से दिखाई पड़ रही है। यह अकारण नहीं है कि विश्व की दोनों शीर्षस्थ वित्तीय एजेंसियों - अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक ने विश्वव्यापी विकास दर संबंधी अपने पूर्वानुमान के जो आँकड़े जारी किए थे उनमें उन्हें संशोधन करने को बाध्य होना पड़ा है। मुद्राकोष ने विश्वव्यापी सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की विकास दर के ४.२ प्रतिशत होने का आकलन किया था। अब उसने एकदम साफ कर दिया है कि सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर किसी भी अवस्था में ३.४ प्रतिशत से तीव्र नहीं हो सकती। विश्व बैंक ने तो पहले ही सकल घरेलू उत्पाद की विकास की गति ३.३ प्रतिशत आँकी थी। अब नये परिप्रेक्ष्य में इसका मानना है कि विकास की गति २.२ प्रतिशत तक ही सीमित रह जाएगी। ध्यान रखने की बात है कि सन् २००० में विश्वव्यापी सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर ४ प्रतिशत रही थी। इन दोनों महत्वपूर्ण संस्थाओं के आकलन में इतनी भिन्नता का कारण वास्तव में अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में व्याप्त अस्थिरता ही है। थोड़े शब्दों में कुछ अर्थवेत्ताओं के इस मत से सहमत हुआ जा सकता है कि वर्त्तमान वित्तीय वर्ष में विश्वव्यापी सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर गतवर्ष की तुलना में आधी हो जाएगी।

यह अस्वाभाविक भी नहीं है। जब विश्व की सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति अमरीका की अर्थव्यवस्था ही मंदी की मार से ग्रस्त हो तो फिर शेष विश्व इससे अछूता रह कैसे सकता है। संक्षेप में कहा जाए तो अमरीका के शेयर बाजार से जो

संकट आरंभ हुआ वह वहाँ के तकनीकी क्षेत्र के व्यय में तीव्र गिरावट से विस्तृत होते हुए अब अमरीकी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को अपनी गिरफ्त में ले चुका है। इस आधार पर कुछ लोग यह तुकबंदी कर रहे हैं कि - "अमेरिकी अर्थव्यवस्था का संकट 'वाल स्ट्रीट' (शेयर बाजार) से 'मेन स्ट्रीट' तक संक्रमित हो चुका है।" जिस तरह अमेरिका की नामी-गिरामी कंपनियाँ अपने कर्मचारियों की संख्या में कटौती कर रही हैं उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ के उद्योगपति एवं व्यापारी अपने व्यय भार को कम करने तथा आय एवं व्यय के बीच संतुलन कायम करने के लिए कितने उतावले हैं। अमेरिका का कोई अखबार या पत्रिका उठा लीजिए, टी०वी० के किसी समाचार संबंधी चैनल या वेबसाइट पर जाईए, आपको किसी न किसी कंपनी के कर्मचारियों की संख्या में कटौती का समाचार अवश्य मिलेगा। कम्प्यूटर की दुनिया के तीन सर्वाधिक क्षमता सम्पन्न संस्थानों – इंटेल, सिस्को एवं हेवलेट्ट पैक्कार्ड ने इस वर्ष हजारों की संख्या में कर्मचारियों की छंटनी की है। यह प्रक्रिया अभी भी जारी है। इनमें वे कुशल कर्मचारी भी शामिल हैं जिन्हें एच-१ बी वीसा की विशिष्ट श्रेणी में वहाँ नियुक्त किया गया था। अमेरिका ने इस विशिष्ट वीसा के द्वारा विशेषकर कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग के क्षेत्र में विदेशी प्रशिक्षित कर्मियों को अपने यहाँ आकर्षक शर्तों पर काम करने की छूट दी हुई है। यह वीसा एक प्रकार का कार्य आदेश (परमिट) है जिसके तहत कोई भी कुशल कर्मी बतौर इंजीनियर एक कंपनी में छः वर्षों तक काम कर सकता है। इस वीसा के तहत अमरीका जाने वालों में ज्यादातर इंजीनियर भारतीय एवं ताईवानी हैं। आज आलम यह है कि इनमें से किसी को उनके संबंधित कंपनी का प्रबंधन किसी भी क्षण कह देता है कि अब कंपनी को आपकी सेवाओं की जरूरत नहीं है एवं वह एक ही क्षण में बेकार होकर अमरीका की सड़कों पर

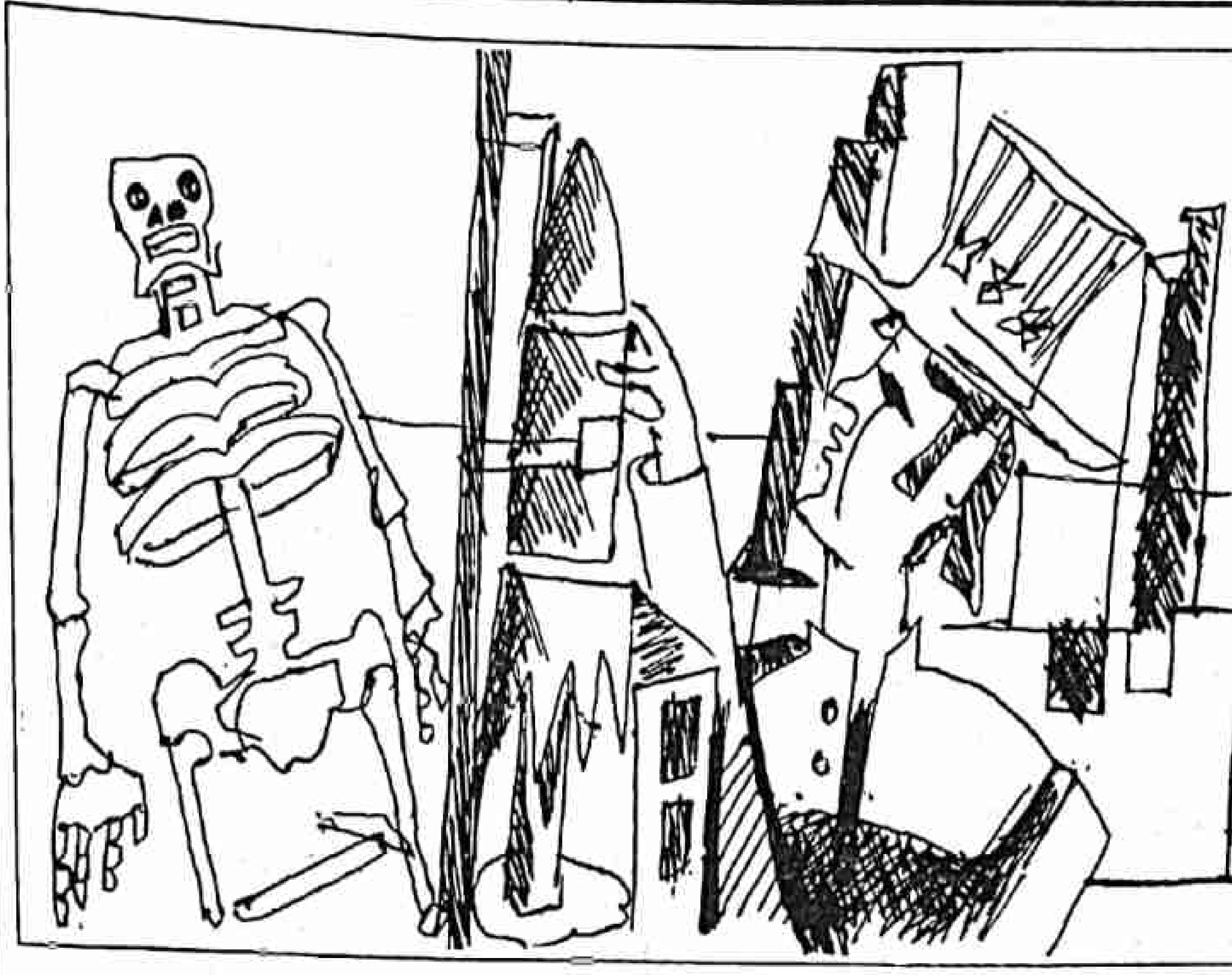

घूमने लगता है। वहाँ की कानूनी बाध्यताओं के कारण वे सामान्यतः कोई छोटा-मोटा काम अपने जीविकोपार्जन के लिए भी नहीं कर सकते। उनकी स्थिति क्या होगी इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। क्या कुछ समय पहले तक कोई ऐसी दुर्दशा की कल्पना तक कर सकता था?

कर्मचारियों में कटौती का सीधा अर्थ है कि इन संस्थानों को मिलने वाले कार्यों में कमी आई है। किसी भी स्वस्थ औद्योगिक इकाई में कर्मचारियों की संख्या उसी अवस्था में कम की जाती है जब उत्पादन की मात्रा कम करनी हो। और उत्पादन में कटौती का मतलब है, बिक्री में गिरावट। ठीक उसी तरह सेवा क्षेत्र में भी कर्मचारियों की संख्या कम किए जाने का अर्थ है कि उसकी सेवा लेने वालों की संख्या घट रही है। यानी कुल मिलाकर उत्पाद या सेवा की खरीददारी में तीव्र गिरावट से ही वर्त्तमान स्थिति पैदा हुई है और आर्थिक मंदी मूलतः उपभोक्ता के विश्वास में कमी तथा खरीददारी में तीव्र गिरावट से ही उत्पन्न होती है। अगर हम समस्त विश्व पर नजर घुमाएँ तो अमेरिका एवं यूरोप से लेकर एशिया तक ये लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं।

इन परंपरागत संकेतकों के अलावा भी कई ऐसे संकेतक हैं जो कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था में छायी मंदी को प्रमाणित कर रहे हैं। भूमंडलीकरण के इस युग में आर्थिक मंदी को मापने के कई अजीबो-गरीब मापदण्ड बनाए गए हैं और आश्चर्य की बात यह है कि इनमें से कई कसौटी पर सही साबित हो रहे हैं। इन्हीं में से एक है अंग्रेजी अक्षर 'आर' संबंधी सूचकांक। 'आर' दरअसल, अंग्रेजी के शब्द 'रिसेशन' (मंदी) के पहले अक्षर का द्योतक है। यह सूचकांक इस आधार पर निर्धारित होता है कि संबंधित देश के प्रमुख समाचार पत्रों ने एक निश्चित अवधि में 'रिसेशन' शब्द का प्रयोग कितनी बार किया। अमेरिका में हाल के दिनों में यह सूचकांक काफी ऊपर गया है। सन् २००१ की पहली चौथाई में केवल 'द न्यूयार्क टाईम्स' एवं 'वाशिंगटन पोस्ट' में छपे लगभग ६५० आलेखों में 'रिसेशन' शब्द का प्रयोग किया गया। यह सन् २००० के मध्य तक प्रयोग किए गए 'रिसेशन' शब्द से तीन गुना से भी ज्यादा है। यानी अमेरिकी मंदी अब गंभीर रूप धारण कर चुकी है। यह माना जा रहा है कि अमेरिका का सकल घरेलू उत्पाद विकास दर १.५ प्रतिशत के औसत पूर्वानुमान से भी नीचे जा सकता है। अगर विकास में गिरावट गत वर्ष के ५ प्रतिशत से अधिक हुआ तो निश्चय ही यह एक खतरनाक स्थिति होगी। कहना न होगा कि यदि अमेरिकी सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर इस वर्ष १ प्रतिशत के आसपास रही तो यह सन् १९७४-७५ के

Scanned with OKEN Scanner

तेल संकट के बाद की सबसे तीक्ष्ण मंदी हो जाएगी। यह विश्वास कि सूचना तकनीक अपनी आकलन क्षमता के आधार पर भावी संकटों से संस्थानों को आगाह करा देगा एवं इस तरह आर्थिक मंदी आने की संभावना ही मर जाएगी – वास्तव में खोखला साबित हुआ है। इसी तरह नई अर्थव्यवस्था का यह मिथक भी टूटा है कि सूचना तकनीक पर व्यय मंदी से प्रतिरक्षित (रिमेशन प्रूफ) है एवं इनकी माँग हमेशा बनी रहेगी और इसकी पूर्ति के लिए इस क्षेत्र में निवेश जारी रहेगा। इस वर्ष की पहली चौथाई में अमेरिका में सूचना तकनीक संबंधी उपकरणों तथा सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में निवेश में सन् १९९५ से सन् २००० तक लगातार औसत २५ प्रतिशत वृद्धि के बाद पहली बार ६.५ प्रतिशत की वास्तविक गिरावट आई है। इस पहली चौथाई में ही इलेक्ट्रॉनिक सामानों के खरीद आदेश में वार्षिक दर के हिसाब से २० प्रतिशत की गिरावट आ चुकी है। यह गिरावट आगे और तीव्र होने वाली है।

तो यह है अमेरिका की स्थिति! उधर दूसरी आर्थिक महाशक्ति जापान के संकट को मिला दें तो स्थिति और भी भयावह हो जाती है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि जापान पिछले एक दशक से ज्यादा समय से मंदी की गिरफ्त से निकलने के लिए छटपटा रहा है। अमरीका और जापाान का सम्मिलित उत्पाद (आऊटपुट) विश्व के कुल उत्पाद का ४५ प्रतिशत है। जाहिर है इन दो देशों की भयावह मंदी की प्रतिध्वनि समस्त विश्व में सुनाई पड़नी चाहिए; और ऐसा हो भी रहा है।

इस भूमंडलीकृत विश्व के अन्य उभरते बाजारों से भी ऐसे ही डरावने समाचार आ रहे हैं। अर्जेण्टिना एवं तुर्की का वित्तीय संकट हमारे सामने है। पूर्वी एशियाई देशों की खलबलाहट भी साफ सुनाई पड़ रही है। इनमें मलेशिया, फिलिपीन, कोरिया, ताईवान एवं थाईलैण्ड का विदेशी मुद्रा भंडार अपनी खस्ताहाली पर आठ-आठ आँसू बहा रहा है। आखिर क्यों? वास्तव में इनकी अर्थव्यवस्था बहुत हद तक अमेरिका एवं जापान को हार्डवेयर निर्यात करने पर आधारित है। इस निर्यात में मुख्यतः कम्प्यूटर के पुर्जे एवं सेमीकण्डर शामिल होते हैं। अमेरिका एवं जापान दोनों जगह माँग व मूल्यों में गिरावट से इनकी अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई है। स्पष्ट है कि वर्तमान मंदी से पूरे विश्व भर का व्यापार एवं विकास दर प्रभावित हो रहा है। विश्व बैंक के अनुसार इस वर्ष विश्व व्यापार का विकास दर मात्र ५.५ प्रतिशत रहेगा, जबकि गत वर्ष यह १३ प्रतिशत था। अब प्रश्न है कि यह मंदी कितनी तीव्र एवं लंबी होगी? जाहिर है मंदी जितना लंबा खिंचेगा इसकी तीक्ष्णता उतनी ही बढ़ेगी एवं विश्व अर्थव्यवस्था भी उसी परिमाण में प्रभावित होगी।

इस भूमंडलीकृत विश्व के अन्य उभरते बाजारों से भी ऐसे ही डरावने समाचार आ रहे हैं। अर्जेण्टिना एवं तुर्की का वित्तीय संकट हमारे सामने है। पूर्वी एशियाई देशों की खलबलाहट भी साफ सुनाई पड़ रही है। इनमें मलेशिया, फिलिपीन, कोरिया, ताईवान एवं थाईलैण्ड का विदेशी मुद्रा भंडार अपनी खस्ताहाली पर आठ-आठ आँसू बहा रहा है।

इसके संबंध में भी आर्थिक विश्लेषकों के बीच एक राय नहीं है। एक पक्ष का मानना है कि विश्वयुद्ध के बाद से अमेरिका की कोई भी मंदी दो वर्ष से ज्यादा समय तक नहीं रही। इस आधार पर इनका आकलन है कि मंदी का यह घना कुहरा शीघ्र ही छँट जाएगा। उदारवादी बाजार अर्थव्यवस्था मे मंदी की अर्थशास्त्री केन्स द्वारा दी गई परंपरागत व्याख्या इस तरह है, ''बाजार में जब वास्तविक मांग अनुमान के स्तर से नीचे रहता है तो फर्मों के उत्पादन की मात्रा एवं श्रमिकों की संख्या में कटौती करनी पड़ती है। पूर्व आकलन न करने के कारण उत्पादित सामान (इन्वेंटरी) बिक्री के आभाव में ज्यों के त्यों पड़े रहते है एवं पूंजीगत व्यय गिरावट आती है।'' मंदी के इस चक्र की तरह ही इसका निदान भी केन्स के सिद्धांत में उपलब्ध है। इसका एक बड़ा मिशन ब्याज दर में कटौती करना बताया गया है। ब्याज दर में कटौती के परिणामस्वरूप निवेशकर्ताओं के लिए निवेश आकर्षक होता है तथा बाजार में माँग बढ़ती है और पुनः इसकी स्वाभाविक परिणति होती है – उत्पादन में वृद्धि। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में इस नुस्खे से अपेक्षित परिणाम आए भी हैं।

पर जापान के मामले में ऐसा नहीं हो सका। सन् १९८० के दशक में जापान सबसे अधिक गतिशील अर्थव्यवस्था वाला देश माना जाता था। सन् १९८९ की तबाही के बाद से अब तक कितनी बार ब्याज दर में कटौती की गई एवं सरकारी व्यय में भी वृद्धि हुई, मगर अर्थव्यवस्था गति नहीं पकड़ सकी। यदि अमेरिकी मंदी के मामले में ऐसा ही हुआ तो क्या होगा? वास्तव में यह प्रश्न ही आज समस्त विश्व को डरा रहा है। इस भूमंडलीकृत विश्व में व्यापार की जटिलता जिस तरह बढ़ी हैं। अर्थव्यवस्था के पटल जिस परिमाण में परिवर्तित हुए हैं – उसमें किस आर्थिक परिघटना की क्या परिणति होगी – कह पाना कठिन है। आज डॉलर ही विश्व की मानक मुद्रा है। केवल डॉलर की अस्थिरता विश्व की वित्तीय व्यवस्था को डाँवाडोल कर सकती है। अमेरिका के पूर्व वित्त मंत्री लैरी सम्मर्स ने हाल के अपने एक भाषण में यह आशंका प्रकट किया है कि वर्तमान अमेरिकी मंदी २०वीं सदी के आरंभिक अवस्था वाली मंदी के सदृश हो सकती है। ध्यान रखने की बात है कि इस आर्थिक मंदी के गर्भ से फासीवाद का उदय हुआ एवं जो अंततः दूसरे विश्व युद्ध का एक प्रमुख कारण बना। हालांकि सम्मर्स ने एकदम निश्चयात्मक भाव में ऐसा नहीं कहा। लेकिन उनकी आशंका यदि सही साबित हुई तो? स्पष्टतः इसका उत्तर अभी भविष्य के गर्भ में है। हमें सतर्क व सावधान होकर इस मंदी पर नजर रखना होगा। ■

Scanned with OKEN Scanner

गाँधी नगर, गुजरात में ४ मई २००१ को भारतीय किसान संघ की रैली पर एक रपट

अब किसान नहीं, सरकार के मंत्री और अधिकारी आत्महत्या करेंगे : दत्तोपंत ठेंगड़ी

यदि सरकार ने अमरीका की तरफदारीकर किसानों और मजदूरों को दबाने का प्रयास किया तो भारतीय किसान संघ इसका कड़ा विरोध करेगा। विश्व व्यापार संगठन के साथ सरकार द्वारा करार किए जाने के कारण देश के किसान तबाह हो गए हैं तथा आत्महत्या कर रहे हैं, परंतु अब किसान आत्महत्या नहीं करेगा बल्कि गलत नीतियाँ लागू करने वाले सरकार के मंत्री और अधिकारी आत्महत्या करेंगे।

चौदह अप्रैल, १९९४ को तत्कालीन सरकार ने संसद और जनता को विना विश्वास में लिए विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के सदस्य के रूप में हस्ताक्षर किए जिसे भारतीय किसान संघ ने काले दस्तावेज़ की संज्ञा दी है और इसके विरुद्ध लड़ने का मन बना लिया है। इस युद्ध का बिगुल बजाया ४ मई, २००१ को गाँधीनगर (गुजरात) में भारतीय किसान संघ के संस्थापक राष्ट्रऋषि दत्तोपंत ठेंगड़ी ने।

जब प्रण-प्रबल होता है तो चिलचिलाती धूप भी चाँदनी-सी लगती है। यही हाल थी लगभग एक लाख की संख्या में उपस्थित उन किसानों की जो कड़ी धूप में मुस्कुराते हुए इस विशाल रैली में उपस्थित हुए थे। न केवल वे अपने खर्च पर इस रैली में उपस्थित हुए बल्कि डब्ल्यू.टी.ओ. के विरुद्ध संघर्ष जारी रखने के लिए उन्होंने एक-एक रुपया चंदा (एक-एक वर्कर) इकठ्ठाकर एक लाख रुपए का चेक श्री ठेंगड़ी जी को प्रदान किया। किसानों के इरादा का अंदाज इससे भी लग सकता है कि उन्होंने डब्ल्यू.टी.ओ. के एक पुतला को काला कपड़ा पहनाकर मंच के पास खड़ा कर दिया था।

वहाँ उपस्थित किसानों के मन में डब्ल्यू.टी.ओ. के प्रति दु:ख था, आँखों में मुश्किलों की घटाएँ थीं और बाहु में प्रतिकार का संकल्प।

महसाणा जिले से आए एक किसान ने कहा, "हमारी सरकार भले विश्व व्यापार संगठन के आगे झुक जाए, लेकिन हम लोग अपने देश को बर्बाद नहीं होने देंगे।"

वस्तुत: किसानों के साथ समस्या यह बढ़ती जा रही है। सांबरकांठा जिले के कृषक श्री बाल जी भाई ठाकुर ने अपनी प्रतिक्रिया में कहा कि "विश्व व्यापार संगठन के कहने पर कृषि पर जो सब्सिडी मिलती है वह बंद कर दी गई है। डीज़ल, बिजली और खाद काफी महँगे हो रहे हैं। किसान कर्ज के बोझ तले दबे जा रहे हैं और अनेक आत्महत्या की ओर बढ़ रहे हैं।"

भारतीय मजदूर संघ द्वारा आयोजित किसान रैली को राष्ट्रऋषि दत्तोपंत ठेंगड़ी, किसान संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. कुँवरजीभाई जादव, राष्ट्रीय मंत्री श्री संकटा प्रसाद, श्री जीवणभाई पटेल तथा प्रदेश अध्यक्ष श्री प्रफुल्ल भाई संजलिया आदि अनेक वक्ताओं ने संबोधित किया।

ठेंगड़ी जी ने कहा, "यदि सरकार ने अमरीका की तरफदारीकर किसानों और मजदूरों को दबाने का प्रयास किया तो भारतीय किसान संघ इसका कड़ा विरोध करेगा। विश्व व्यापार संगठन के साथ सरकार द्वारा करार किए जाने के कारण देश के किसान तबाह हो गए हैं तथा आत्महत्या कर रहे हैं, परंतु अब किसान आत्महत्या नहीं करेंगे बल्कि गलत नीतियाँ लागू करने वाले सरकार के मंत्री और अधिकारी आत्महत्या करेंगे। इसके लिए काफी लम्बी लड़ाई लड़ने के लिए किसान तैयार हैं।"

विश्व व्यापार संगठन का सर्वाधिक प्रभाव किसानों पर ही पड़ेगा। इसे एक घातक शस्त्र की संज्ञा देते हुए ठेंगड़ी जी ने कहा, "विश्व व्यापार संगठन विकासशील देशों का शोषण करनेवाला अमरीकी हथियार है। संसद को अंधेरे में रखकर ९० करोड़ लोगों को प्रभावित करनेवाला निर्णय मुठ्ठीभर लोग नहीं ले सकते। केंद्र सरकार को तुरंत संगठन से बाहर आना चाहिए। सरकार कह रही है कि पूर्व की सरकार ने इस संगठन की शर्तों पर हस्ताक्षर किए हैं। अत: वे मजबूर हैं। यह सिर्फ बहानेबाजी है। हमारी विदेश नीति अमरीका के अनुकूल उसे खुश करनेवाली है। हमें यह बात समझनी चाहिए कि अमरीका को हमारी ज्यादा जरूरत है। हमें गुलाम जैसा व्यवहार करना छोड़ देना चाहिए।"

वक्ताओं के भाषणों को किसानों ने न केवल सुना बल्कि जमकर नारे भी लगाए – "डब्ल्यू.टी.ओ. भगाओ, किसान बचाओ" और डब्ल्यू.टी.ओ. को हटाना है, लक्ष्य तक पहुँच जाना है।"

विश्व व्यापार संगठन के प्रभाव के कारण मोनसैंटो बीज आयात-निर्यात नीति किसानों को तबाह कर देगी। जहाँ किसानों को इससे सुरक्षा मिलनी चाहिए वहीं उनकी मूलभूत समस्याओं पर भी समग्र रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है। शीतगृहों की व्यवस्था का अभाव है, भंडारण और उचित मूल्य पर उत्पाद-विक्रय भी समुचित व्यवस्था नहीं है। कृषि प्रधान देश में कृषि और कृषकों की सुरक्षा प्राथमिकता होनी चाहिए। किसानों की आर्थिक व्यवस्था मजबूत न करने वाली अर्थनीति कितनी घातक हो सकती है इसकी चर्चा करते हुए श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने कहा कि देश की आर्थिक व्यवस्था बिगड़ रही है। स्पर्धात्मक अभिगम के लिए चीन, जापान, अमरीका अभी तैयार नहीं हुए, ऐसे में यहाँ वातानुकूलित कारों में बैठकर देश में स्पर्धा की बातें कर रहे हैं।■

Scanned with OKEN Scanner

लेख

विश्व व्यापार संगठन क्या करता है?

अब गैट और डंकल प्रस्ताव १९९० के प्रारंभिक वर्षों में आए, इनका भारी विरोध हुआ था। ये नई अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक व्यवस्था के प्रारंभिक चरण में था जिसमें औद्योगिक देशों ने कमजोर देशों पर अपनी मनमानी थोपने का अधिकार पाया था। इस नई व्यापारिक व्यवस्था में १९९५ तक सौ से अधिक देश शामिल हुए। इन देशों के बीच व्यापार में आने वाली बाधाओं को हटाने की बात उठी। यह व्यापारिक व्यवस्था केवल कथनी में आर्थिक सुधार की बात करती है। इस व्यवस्था के भीतर कृषि, बौद्धिक सम्पदा अधिकार, सब्सिडी हटाने संबंधी मामलों पर समझौतों का दौर चलाया जाता रहा, इन सभी समझौतों को एक विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के अंतर्गत किया गया। कुछ विरोधाभास के बाद भारत भी इसमें शामिल हुआ।

इस संगठन में भारत के शामिल हुए पाँच वर्ष बीत गए हैं। इस संगठन के कार्यकलापों में डंकल की जहरीली डंक से उभरे घाव और पीड़ादायी होते जा रहे हैं। इस पर उठने वाले विवाद और गहराते जा रहे हैं। कृषि, घरेलू उत्पाद और औद्योगिक उत्पादों पर लगने वाले मात्रात्मक प्रतिबंध १ अप्रैल २००१ से हटा लिए गए हैं। सन् २००० में भी बहुत से उत्पादों से मात्रात्मक प्रतिबंध हटाए गए थे।

हमारी अर्थव्यवस्था सीमा शुल्क, आयात शुल्क, मात्रात्मक प्रतिबंध और अन्य प्रतिबंधों से सुरक्षित होती थी लेकिन अब इन प्रतिबंधों को हटाकर सस्ते विदेशी उत्पादों के सामने हमारे उत्पादों को प्रतिस्पर्धा के लिए खड़ा कर दिया गया है।

महानगरों की बहुमंजिली इमारतों के वातानुकूलित कमरों में टी.वी. और खुशगवार मैग्जिनों से बनी मानसिकता वाले अभिजात्य दौलतमंदों के लिए विदेशी उत्पादनों का देश में आना भले ही खुशी की बात हो, लेकिन देश के करोड़ों किसानों, लघु-उद्यमियों, कारीगरों, मछुआरों, वनवासियों को भारी हानि होती चली जा रही है। सरकार लोगों की रोजी छीन जाने की दशा में सहायता राशि देने की बात कर रही है। सरकारी भीख पर पलने का शर्मनाक समाधान देने वाले लोग यह नहीं समझ रहे कि भारतवासियों को इस दुर्दशा में पहुँचाने का मतलब कितना भयानक होगा।

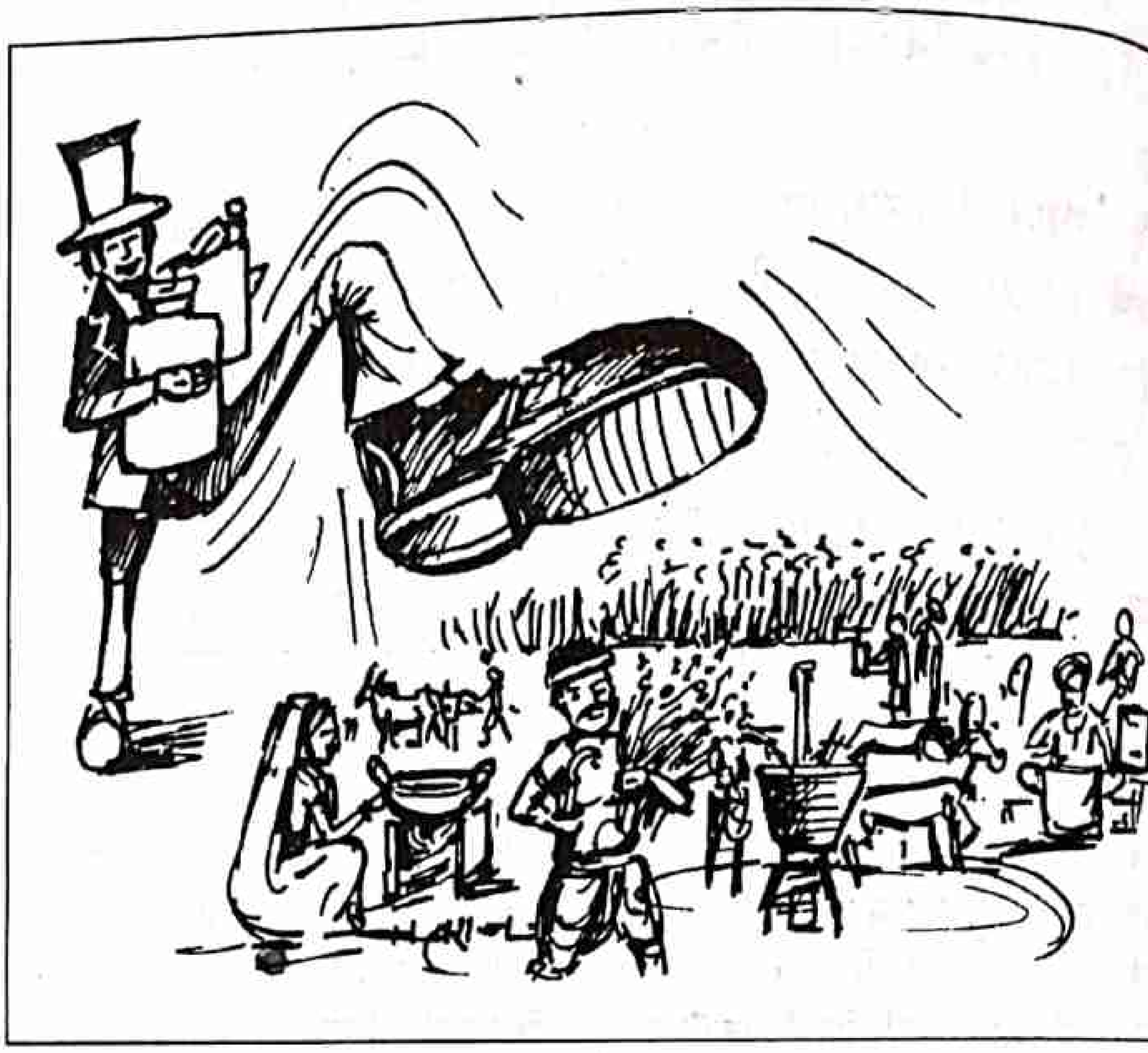

अमरीका के मूल निवासियों को दमित करने के लम्बे समय से प्रयास हुए हैं। उनके अस्तित्व को अनेक तरीकों से नष्ट किया गया है और आज भी वहाँ कब्जा जमाकर विकसित हुए विभिन्न देशों के भगोड़ों के समाज में कोई सुनिश्चित समाज व्यवस्था या परिवारिक ढाँचा नाम की चीज नहीं है। वहाँ के लोग कमाते-खाते लोग हैं। वे लोग एक बाड़े में विकसित हुए हैं। वहाँ कंपनियाँ की बादशाही से मुर्गी फार्म की लिजलिजी मुर्गियों की तरह स्वछंद प्राकृतिक विकास से वंचित हैं आर्थिक गुलामी का असर उनकी मानसिकत को अधिक से अधिक अपराध, आत्महत्या बलात्कार, पागलपन तक ले जाएगा। लेकिन चिरका से स्वछंद प्राकृतिक विकास से पलने वाले भारत के अधिकांश लोग जनविरोधी कानूनों से नियंत्रित नहीं हो सकते। हमार देश के लोग आत्मानुशान का पाठ आध्यात्मिक संदेशों से प्राप्त करते चले आए हैं। हमारे देश का साहित्य क्षण भंगुर राजसत्ता को केंद्रित बनाकर नहीं लिखे गए। वह प्रकृति और जनभावना को मध्यम बनकर अनश्वर-शाश्वत सत्ता की अभिव्यक्ति करते हैं। इनके विद्रोह की चेतना को किसी भी बाहरी व्यवस्था के तोप-तमंचों से नहीं रोका जा सकता। ऐसे जनमानस को सरकार भीख देकर संतुष्ट कर लेगी क्या? बढ़ती गरीबी, भूखमरी को नियंत्रित करने का रास्ता कुछ आर्थिक सहायता नहीं हो सकती, जिसे आसुरी देशों के तर्ज पर मरी समझ के राजनेता और नौकरशाही देना चाहती है।

Scanned with OKEN Scanner

विश्व व्यापार संगठन कर क्या रहा है? यह राष्ट्रों को उनकी अर्थव्यवस्था को खोलने की बात करता है ताकि बिना किसी रुकावट के आयात-निर्यात हो सके। इन पर लगे नियंत्रणों को तीव्रता के साथ हटाया जा रहा है। यह संगठन के उनके कमजोर उद्योगों एवं कृषि क्षेत्र को दी जा रही सब्सिडी को समाप्त करने की बात करता है। इसके लिए अन्य देशों पर दबाव डालता है। यह संगठन चाहता है कि विश्व के कमाजोर देश अपने पर्यावरण और जनजीवन की रक्षा की अन्य आवश्यकता नीतियों को भी व्यापार के लिए छोड़ दें। जिससे उनके पर्यावरण एवं पर्यावरण निर्भर जनजीवन दोनों पर खतरें बढ़ते जा रहे हैं।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक शोषण, यातायात के कारण प्रदूषण, मूलभूत ढाँचे के विकास के कारण प्राकृतिक रूप से मिले जन्म स्थान से विस्थापन, जैवविविंधता एवं आम लोगों की रोजी-रोटी का नाश कर रहा है। विश्व व्यापार संगठन इन समस्याओं को बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित रुपों में दबाव डालता है :-

- निर्यात नियमों में ढील दिलाना ताकि वनवासियों, किसानों, मछली उत्पादों, खनिजों के शोषण को बढ़ावा मिले जैसे, समुद्री क्षेत्र के उत्पादों एवं जड़ी-बूटियों के बेरोकटोक निर्यात को बढ़ावा देना।
- किसी एक तरह के कृषि उत्पादन जैसे फूलों-फलों निर्यात की व्यावसायिक फसलों और बाजार आधारित फसलों के उत्पादन एवं निर्यात को बढ़ावा देने वाली योजनाओं को बनाने पर जोर देना।
- आयात-नियमों में ढील दिलाना, जिससे आयात पर रुकावटे खत्म हो और हर तरह के आयात जिनमें प्रदूषक, घातक मलबा और पौधों की ऐसी प्रजातियाँ होती हैं जो यहाँ के स्वदेशी प्रजातियों को नष्ट कर देती है।
- ट्रिप्स के माध्यम से बौद्धिक संपदा अधिकारों को मानने के लिए दबाव डालना, जो स्थानीय दशाओं, स्वदेशी ज्ञान इत्यादि को नष्ट कर दे और बीज कानूनों के कारण किसान दूसरे दर्जे के नागरिक बन जाये।
- विदेशी निवेश को बढ़ावा देना, जिनको पारिस्थितिकी और सामाजिक प्रभावों से कोई मतलब नहीं होता।

विश्व व्यापार संगठन देशों को एथिनिक, जन-स्वास्थ्य पर्यावरणीय मानको के लिए प्रतिबध लगाने की भी छूट देता है। लेकिन ये प्रतिबंध खुले व्यापार के कारण बेकार हो जाते है और राष्ट्रों के लिए इन मानकों के कारण उदारीकरण का विरोध करना असंभव होता है।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय हित की रक्षा हर संभव तरीके से करने की घोषणा की है। लेकिन सभी संकेत इसके विपरीत हैं। वास्तव में ऐसा लगता है कि सरकार ने विश्व व्यापार संगठन की शर्तों को मानने में जल्दबाजी की है और वह भी समय से बहुत पहले। १९९० की शुरूआत से ही अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक के 'वैश्वीकरण' और विश्व व्यापार संगठन की आयात-निर्यात नीतियाँ भारत के प्राकृतिक पर्यावरण और उसमें निवास करने वाला को तेजी से विनाश के कगार पर पहुँचा रह है। अब एक मात्र आशा भारत एवं संपूर्ण विश्व में किसानों, वनवासी, कारीगरों, लघु उद्यमियों, मछुआरों के संगठनों और सजग सरकारों से विश्व व्यापार संगठन के जीवन विरोधी नियमों को तोड़ने की आशा की जा रही है। इस तरह विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि विश्व व्यापार संगठन के इस खेल को समाप्त करने के लिए दो प्राकर की नीतियाँ लगानी आवश्यक है। एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसी नीति होनी चाहिए जिसमें जैव विविधता संरक्षण के समझौते हों। दूसरी ऐसी नीति हो, जो स्थानीय स्तरों पर परिस्थितिकी, जनजीवन और जैव विविधता को संरक्षण देने के लिए कार्य करें। ■

विनिवेश का घात मॉडर्न फूड के साथ

मॉडर्न फूड एक बहुत लाभकारी सार्वजनिक उपक्रम था। विनिवेश के मौजूदा दौर में इसका ६० प्रतिशत शेयर भारत स्थित विदेशी कंपनी हिन्दुस्तान लीवर ने केवल १०५ करोड़ रुपए में खरीद लिया। जबकि इस उपक्रम की कुल सम्पत्ति दो हजार करोड़ की बतायी जाती है। इसे खरीदने के बाद हिन्दुस्तान लीवर ने सरकार से मरम्मती के नाम पर ८५ करोड़ रुपए और कम करा लिए, यानी २०० करोड की सम्पत्ति का ६० प्रतिशत शेयर ६० करोड़ में पट गया। २ फरवरी, २००० को हिन्दुस्तान लीवर ने प्रबंधन सम्हाला और एक वर्ष में ही इस लाभकारी उपक्रम को ४६ करोड़ रुपए का घाटा लग गया। यह घाटा प्रदर्शन हिन्दुस्तान लीवर के निजी लेखा परीक्षक बाटली वॉय एण्ड कंपनी ने किया। अब तक यह लेखा परीक्षण सरकारी तौर पर किया जाता था। लाभकारी उपक्रम मॉडर्न फूड की दुर्दशा का दौर दूसरे चरण में यहाँ तक आ पहुँचा है कि हिन्दुस्तान लीवर इस उपक्रम का दिल्ली मुख्यालय बन्द करने जा रही है। इस मुख्यालय में १३० कर्मचारी कार्यरत हैं। हिन्दुस्तान लीवर यह नहीं बता रही है कि वह क्यों मुख्यालय बंद करना चाहती है। यदि विनिवेश का यही मतबल है कि कोई हराभरा उद्यम जिससे देश को आर्थिक लाभ और देशवासियों को रोजी रोटी मिल रही हो उसे उजाड़ दिया जाए। लोग भूखमरी के शिकार हों, आत्महत्या करें या अपराध – इस काम को अंजाम देने वाला सरकारी तंत्र कितना विश्वसनीय माना जा सकता है? कहाँ तक हम उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य होंगे? ■

Scanned with OKEN Scanner

समाधान

समुद्र भी हो सकता है ऊर्जा दोहन स्रोत

समुद्र जीवाश्म ईंधनों के अच्छे विकल्प हैं। समुद्र, पृथ्वी के ७०.८% भाग पर है जो सूर्य की ऊर्जा के बहुत अच्छे अवशोषक एवं संग्रहकर्त्ता है। इस संग्रहित ऊर्जा में पुनरुपयोगी ऊर्जास्त्रोत बनने के लायक सभी विशेषताएँ हैं। समुद्री जल में न केवल कई गीगा टन ऊर्जा का अवशोषण करने की क्षमता है बल्कि उनका संग्रह भी कर सकते हैं। जल की ऊँची विशिष्ट ऊष्मा इसे ऊर्जा का एक अच्छा संग्राहक बनाती है।

■ धीप्रज्ञ द्विवेदी

आज जब जीवाश्म ईंधनों के खत्म होने का खतरा हमारे सिर पर आ चुका है तब ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों पर ध्यान देना एवं उनकी खोज करना आवश्यक है। विकास के लिए ऊर्जा पाँच आवश्यक संसाधनों में एक है। ऊर्जा किसी भी राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वर्तमान में हमारे राष्ट्र की ऊर्जा आवश्यकता मुख्यत: जीवाश्म ईंधनों से पूरी हो रही है जो महँगे है और खत्म होने के कगार पर हैं। महँगे होने की वजह से इनके आयात में हमें विदेशी मुद्रा का अपव्यय करना पड़ता है जिससे बजट घाटा बढ़ने के साथ अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे शिक्षा, मानव संसाधन, स्वास्थ्य इत्यादि के लिए बजट में आबंटन कम हो जाता है। यह कम आवंटन सीधे आम जनता के जीवन स्तर को प्रभावित करता है। विदेशी मुद्रा के अपव्यय से हम पर कर्ज का बोझ भी बढ़ता जाता है और यह आयात हमें परावलम्बी बनाता है। अत: यह आवश्यक है कि हम ऊर्जा क्षेत्र में स्वावलम्बी बनें। हमारे पास जीवाश्म ईंधनों की उपलब्धता कम है और ये खत्म हो जाने वाले हैं। जिससे हमें इनके विकल्पों पर ध्यान देना आवश्यक है। इसके विकल्प पुनरुपयोगी या न खत्म होने वाले संसाधन हों, यह आवश्यक है। इनमें सूर्य, पवन एवं समुद्र महत्वपूर्ण हैं। इन्हें अपरंपरागत अक्षय ऊर्जा स्रोत भी कहते हैं।

समुद्र जीवाश्म ईंधनों के अच्छे विकल्प हैं। समुद्र, पृथ्वी के ७०.८% भाग पर है जो सूर्य की ऊर्जा के बहुत अच्छे अवशोषक एवं संग्रहकर्त्ता है। इस संग्रहित ऊर्जा में पुनरुपयोगी ऊर्जास्त्रोत बनने के लायक सभी विशेषताएँ हैं। समुद्री जल में न केवल कई गीगा टन ऊर्जा का अवशोषण करने की क्षमता है बल्कि उनका संग्रह भी कर सकते हैं। जल की ऊँची विशिष्ट ऊष्मा इसे ऊर्जा का एक अच्छा संग्राहक बनाती है। समुद्रीय ऊर्जा कई रूपों में उपलब्ध है। उदाहरण स्वरूप समुद्र के ऊपरी सतह एवं आंतरिक भागों के ताप में अंतर होता है। यह कई स्थानों पर २०° सें० तक भी होता है। ऊर्जा का यह स्वरूप समुद्री तापीय ऊर्जा कहलाता है। इस तापान्तर का उपयोग कर बिजली का उत्पादन संभव है।

समुद्र में ऊर्जा के कई महत्वपूर्ण स्रोत हैं जैसे समुद्री लहरें, ज्वारभाटा, समुद्र में एक ही स्थान पर दो विभिन्न तरह के जलों के मिलने से आया खारेपन में अंतर। समुद्री वनस्पतियाँ भी ऊर्जा के स्रोत हैं। समुद्री घास के बड़े पैमाने पर खेती से हम मिथेन के एक अक्षय स्रोत प्राप्त कर सकते है। समु भारी जल या ड्यूटेरियम अणु के भी स्रो है। वर्त्तमान में ड्यूटेरियम के नियंत्रि संलयन के प्रयास किये जा रहे हैं। इन प्रयास में सफलता मिलने पर हमें करोड़ों वर्षों तक ऊर्जा की आपूर्ति समुद्र से होती रहेगी।

समुद्र की तापीय ऊर्जा, तरंग ऊर्जा ज्वारीय ऊर्जा और खारापन में अंतर को ऊर्ज का प्रमुख स्रोत माना जा रहा है।

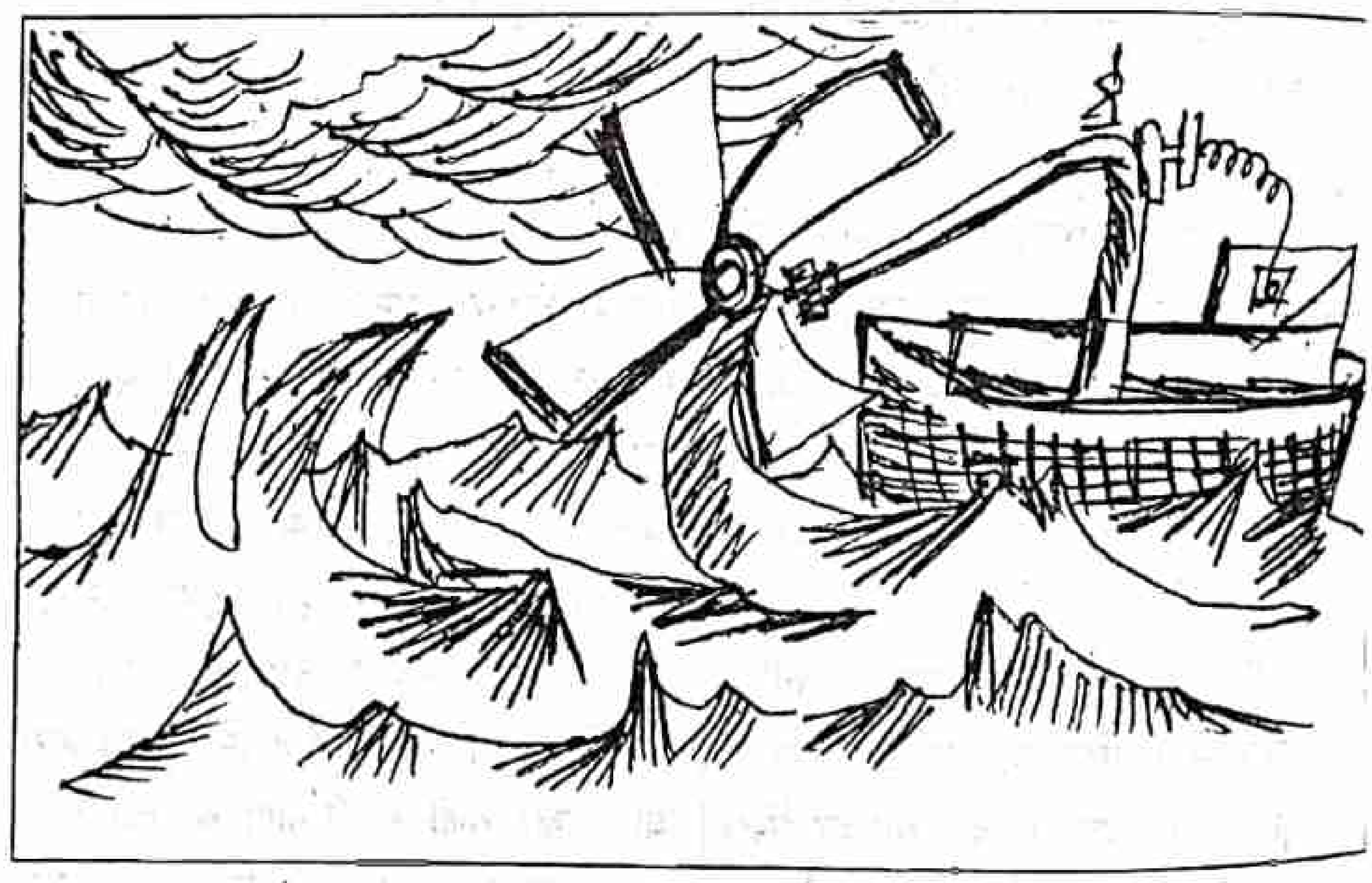

भारत में ज्वारीय ऊर्जा के उपयोग पर अनुसंधान चल रहा है। अभी तमिलनाडू के तटीय क्षेत्र में ज्वारीय ऊर्जा से विद्युत उत्पादन का एक संयंत्र लगाया गया है। अन्य महत्वपूर्ण स्थानों में कच्छ की खाड़ी, कैम्बे की खाड़ी एवं सुन्दरवन क्षेत्र इसके लिए उपयुक्त माना गया है। ज्वारीय ऊर्जा से बिजली उत्पादित करने के लिए तटीय क्षेत्रों में टरबाइन लगाए जाते है जो ज्वारीय ऊर्जा से चलते है और उनसे विद्युत उत्पादन होता है। समुद्र से उत्पादित ऊर्जा पर्यावरण मित्र होने के साथ पुन: उपयोग में आने लायक एवं सस्ती होती है। यह अपरंपरागत ऊर्जा स्रोत के रूप में जीवाश्म ईंधनों का अच्छा विकल्प है। ■

Scanned with OKEN Scanner

लेख

सक्षम महिलाओं को कर्ता बनाना चाहिए

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

भारत सरकार ने महिला सशक्तिकरण नीति की घोषणा की है। महिलाओं के लिए विकास के अवसरों की माँग की गई है जो कि स्वागत योग्य है। परन्तु साथ-साथ परिवार के अंदर बराबरी

की भी माँग की गई है। परिवार का सिद्धांत सौहाद्रपूर्ण असमानता का है। आज के युग में महिलाओं को परिवार का कर्ता बनने का अवसर अवश्य ही मिलना चाहिए परन्तु परिवार के अंदर तो असमानता रहेगी ही। सरकार को अपनी सोच दुरूस्त करनी चाहिए।

'परिवार' का अर्थ होता है कि सब मिलकर सबके हित में काम करें। हर एक दूसरे के लिए त्याग करें। यदि बहन को मद्रासी डोसा खाना है तो भाई नान खाने की अपनी इच्छा का त्याग करे।

'परिवार' का अर्थ होता है कि सब मिलकर सबके हित में काम करें। हर एक दूसरे के लिए त्याग करें। यदि बहन को मद्रासी डोसा खाना है तो भाई नान खाने की अपनी इच्छा का त्याग करे। यदि एक बच्चा बीमार है तो उसके कपड़े दूसरा धो दे। यदि एक बहन के सर में दर्द हो रहा है और वह जल्द सोना चाहती है तो दूसरी बहन किताब पढ़ने की अपनी इच्छा का त्याग कर दे। इस प्रकार के त्याग से परिवार के सदस्य एक दूसरे के हितैषी हो जाते है। यह त्याग सदैव स्वैच्छिक नहीं होता है। यदि परिवार की तरफ से समारोह में किसी को जाना हो तो परिवार के बड़े तय कर देते है कि अमुक व्यक्ति अमुक स्थान पर जाएगा। सदस्य विशेष की इच्छा न हो तो भी उसे बड़े की आज्ञा का पालन करना ही पड़ता है। कौन सा भोजन बनेगा, कौन कपड़े धोएगा और बत्ती कितने बजे बंद होगी यह सब परिवार के बड़े तय कर देते है।

परिवार में बराबरी भी नहीं चलती है। एक बच्चे की इच्छा डोसा खाने की हो और दूसरे की नान तो बराबरी नहीं चलती है। यदि दोनों को बराबर अधिकार दिए गए तो डोसे के साथ पालक खाना पड़ेगा। इसी तरह बीमार बच्चे को कपड़े धोने पड़ेगें तथा आधी रोशनी में किताब पढ़नी पड़ेगी। ऐसी स्थिति में परिवार के बड़े निर्णय कर देते है कि क्या किया जाएगा। सबके हित में एक के अधिकरों को अनदेखा कर दिया जाता है।

परिवार के इस लेन-देन में परिवार के मुखिया अथवा कर्ता की अहं भूमिका होती है। इस प्रकार के सब प्रश्नों को वह तय कर देता है। किसी को पसंद आए या न आए परिवार तक तक ही चलता है जब तक सब कर्ता के आदेश का अनुपालन करते है। यह आशा की जाती है कि कर्ता सर्व हित में निर्णय लेगा। जब तक वह सर्व हित में निर्णय लेता है तब तक ही परिवार बना रहता है अन्यथा परिवार टूट जाता है, बच्चे घर से भाग जाते हैं, तलाक हो जाते है अथवा बेटे बहू अपना चौका अलग कर लेते हैं। अच्छा परिवार चलाने के लिए नेतृत्व की आवश्यकता होती है। परिवार दयालु नेतृत्व से चलता है न कि बराबरी से।

प्रश्न उठता है कि यह नेतृत्व किसका हो महिला का या पुरूष का। यूँ देखा जाए तो लक्ष्मीबाई जैसी अनेक महिलाएँ हुई हैं जिन्होंने परिवार का नेतृत्व किया अथवा वह क्षमता दिखाई। सावित्री अपने पति सत्यवान को काल के मुख से निकाल लाई। निश्चय ही वह सक्षम रही होगी। परन्तु हमारी संस्कृति में पुरुष को ही कर्ता बनाया गया, स्त्री को नहीं। सावित्री, लक्ष्मीबाई तथा मीराबाई जैसी महान एवं सक्षम महिलाओं को भी उनके परिवार का कर्ता नहीं बनाया गया। पति अक्षम हो और पत्नी सक्षम तो भी पुरुष को ही कर्ता बनाया गया। इसका कारण संभवतः यह था कि परिवार की सुरक्षा के लिए बाहुबल का महत्व अधिक था। चोर, लुटेरों एवं व्यभिचारियों से परिवार को बचाने

Scanned with OKEN Scanner

में पुरूष की ही अहं भूमिका थी। महिला सक्षम हो तो भी वह इस भूमिका का निर्वाह नहीं कर पाती थी। दूसरा कारण यह रहा होगा कि पुरुष की तार्किक शक्ति अधिक होती है जबकि महिला की अंत: प्रज्ञा शक्ति। सामाजिक व्यवहार में तर्क की आवश्यकता अधिक होती है। यदि मंडी में आम बेचना है तो आप तर्क से बेच सकते है और अंतर्ज्ञान से भी। परंतु तर्क का पलड़ा भारी पड़ता है चूँकि अंत: ज्ञान से प्राप्त दिशा को तर्क से ही लागू किया जा सकता है। अंतर्ज्ञानी को पता लग सकता है कि किस मंडी में भाव ऊँचा होगा परन्तु उस मंडी में माल पहुँचाने का खर्च, रास्ते में चुँगी आदि की गणित तथा क्रेता को समझाना यह सब तो तर्क शक्ति से ही हो पाता है। इन दोनों कारणों से पुरुष को ही कर्ता बनाया गया।

अक्षम पुरुष नेतृत्व करे तो समस्या अवश्य होगी। अक्सर देखा ज़ाता है कि महिला सही सलाह देती है परन्तु पुरुष उस पर अमल नहीं करता है और परिवार गढ़े में जाता है। सक्षम पत्नी के लिए अक्षम पति के आधीन रहना भी कठिन हो जाता है। पत्नी की पति की गलतियाँ साफ दिखती है जबकि पति को पत्नी की बात समझ में नहीं आती है। ऐसे में पारिवारिक क्लेश होता है। इस समस्या का हमारी परंपरा में हल यह निकाला गया कि ऐसे विवाह ही मत करो जिनमें पुरुष अक्षम और महिला सक्षम हो। इसलिए हमारी परंपरा में प्रतिलोम विवाह का निषेध किया गया। प्रतिलोम विवाह वह होता है जिसमें महिला ऊँची क्षमता (अथवा वर्ण) की होती है और पुरुष नीची क्षमता (अथवा वर्ण) का। वैश्य वर्ण की कैकई से क्षत्रीय दशरथ का विवाह ठीक ही था। परंतु ब्राह्मण मीराबाई के क्षत्रीय राणा से विवाह के भयंकर दुष्परिणाम सामने आए। इसलिए प्रतिलोम विवाह मना कर दिए गए। नतीजा यह हुआ कि हर परिवार में महिला की तुलना में पुरुष सक्षम होता था और वही कर्ता भी होता था। एक साथ दो नियम बनाए गए कि पुरुष कर्ता होगा और पुरुष सक्षम होगा। ऐसी परिस्थिति में महिलाओं को भी कोई कठिनाई नहीं थी। जैसे फैक्ट्री का मजदूर सहज में ही मैनेजर के आधीन काम करना स्वीकार करता है उसी तरह महिलाएँ सहज में ही पुरुष के आधीन रहना स्वीकार करती थीं। पुरुष की यह जिम्मेदारी बनती थी कि वह महिला की बात को समझे तथा उसे संतुष्ट करे। चूँकि उसकी क्षमता अधिक थी इसलिए ऐसा करना संभव भी था। यह महिलाओं के प्रति अनादर नहीं था। यह समय का तकाजा था जिसमें परिवार की समृद्धि के लिए पुरुष के बाहुबल एवं तर्क शक्ति का महत्व अधिक था। इससे महिलाएँ उद्वेलित न हों इसलिए व्यवस्था बनाई गई कि प्रतिलोम विवाह न किए जाएँ। फिर भी हमें स्वीकार करना चाहिए कि यदि मीराबाई को परिवार का कर्ता बना दिया गया होता तो संभवत उनका अकेले का नहीं बल्कि पूरे परिवार का कल्याण हो गया होता!

बहरहाल अब परिस्थिति बदल गई है। वर्तमान में बाहुबल का महत्व कम हो गया है। परिवार की सुरक्षा के लिए बंदूक चलाने की कला तथा पुलिस स्टेशन के फोन नम्बर का महत्व अधिक है और बाहुबल का कम। अनेक महिलाओं ने भी अपनी तर्क शक्ति का विकास कर दिया है। गीता प्रवचन में विनोबा कहते है कि स्त्री को पुरुष की अंत: प्रज्ञा शक्ति तथा स्त्री को पुरुष की तर्क शक्ति अर्जित करनी होगी। इस प्रकार पुरुष के ही कर्ता बनने की अनिवार्यता समाप्त हो गई लगती है। कानून की सुव्यवस्था के कारण स्त्री के लिए कर्ता बनने में कठिनाई नहीं है। अमरीकी कंपनी हिवेट पैकार्ड की मुख्याअधिकारी कार्ली फियोरीना नाम की महिला है। वे विश्व की अधिकतम वेतन पाने वाली अधिकारी है। वे असंख्य पुरुषों से अधिक वेतन पाती है। उनके पति घर पर रहकर बच्चों को सम्हालते हैं। इसी प्रकार विदेशी दूतावास में कार्यरत एक विदेशी महिला के पति घर पर रहते है। इन महिला ने बताया कि "हम दोनों ने मिलकर तय किया कि मैं कमाऊँगी और मेरे पति घर देखेंगे। मेरा वेत[न] उनसे अधिक था। वे घर पर रह कर बच्चों [को] देखते हैं। उन्हें स्कूल पहुँचाते हैं और उन[को] होमवर्क कराते हैं। नया फ्लैट भी उन्होंने [ही] खोजा। वे अपने को हाउस हस्बैंड कहते [हैं।] मैं पैसा कमाकर लाती हूँ। मुझे घर की चिं[ता] नहीं रहती है।" ये सफल प्रतिलोम विवाह [हैं।] महिला ही परिवार की कर्ता हैं। पुरुष [के] बाहुबल की आवश्यकता नहीं रही और महि[ला] की तर्कशक्ति का विकास हो गया। महि[ला] सफल कर्ता बन गई और पुरुष सफल 'गृहणी' बन गया।

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि महिला के कर्ता बन जाने के बाद भी परिवा[र] में बराबरी स्थापित नहीं हुई। महिला पुरुष [की] भूमिकाएँ उलटी पलटी हो गई परन्तु ऊँच-नी[च] पूर्ववत बनी रही। जो दयालु डिक्टेटरशिप पू[र्व] में पुरुष चलाता था वह अब महिला चला[ती] है। पहले महिला बच्चों को होमवर्क कराती थ[ी] और पुरुष कमाकर लाता था। अब पुरुष बच्च[ों] को पढ़ाता है और महिला कमाकर लाती है। पहले पुरुष की चलती थी, अब महिला की चलती है। पहले जिस भावना से महिला परिवा[र] की सेवा करती थी उसी भावना से अब पुरु[ष] सेवा करता है। महिला-पुरुष में विषमता पूर्ववत बनी रही। परिवार के चलने के लिए यह आवश्यक भी था। परिवार तो तब ही चलता है जब हर व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के अनुसार कार्य दिया जाए यानी कार्य विभाजन में समानता हो। मूल बात यह है कि परिवार के हित का निर्णय एक व्यक्ति करे जो सक्षम हो। दूसरी उसकी आज्ञा का पालन करें। यह फार्मूला पूर्ववत लागू रहता है। आज के समय में पुरुष के ही परिवार का नेतृत्व करने का कोई

(शेष पृष्ठ ३० पर)

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि महिला के कर्ता बन जाने के बाद भी परिवार में बराबरी स्थापित नहीं हुई। महिला पुरुष की भूमिकाएँ उलटी पलटी हो गई परन्तु ऊँच-नीच पूर्ववत बनी रही। जो दयालु डिक्टेटरशिप पूर्व में पुरुष चलाता था वह अब महिला चलाती है। पहले महिला बच्चों को होमवर्क कराती थी और पुरुष कमाकर लाता था।

Scanned with OKEN Scanner

लेख

राष्ट्र की प्रगति में स्वदेशी तकनीकी और विकल्प

भारतीय समाज के तकनीकी विकास पर चिंतन करें तो हम पाते है कि तकनीकी विकास के नाम पर अपने यहाँ उपलब्ध प्राचीन तकनीको की सांस्कृतिक उपादेयता को समझने का प्रयास नहीं किया गया। इस देश के योजनाकारों ने इस देश में उपलब्ध तकनीकी को छोड़कर अन्य देशों में विकसित की गई तकनीकों का अंधानुकरण करने के प्रयास किया।

■ मुकुन्द कुमार सिंह

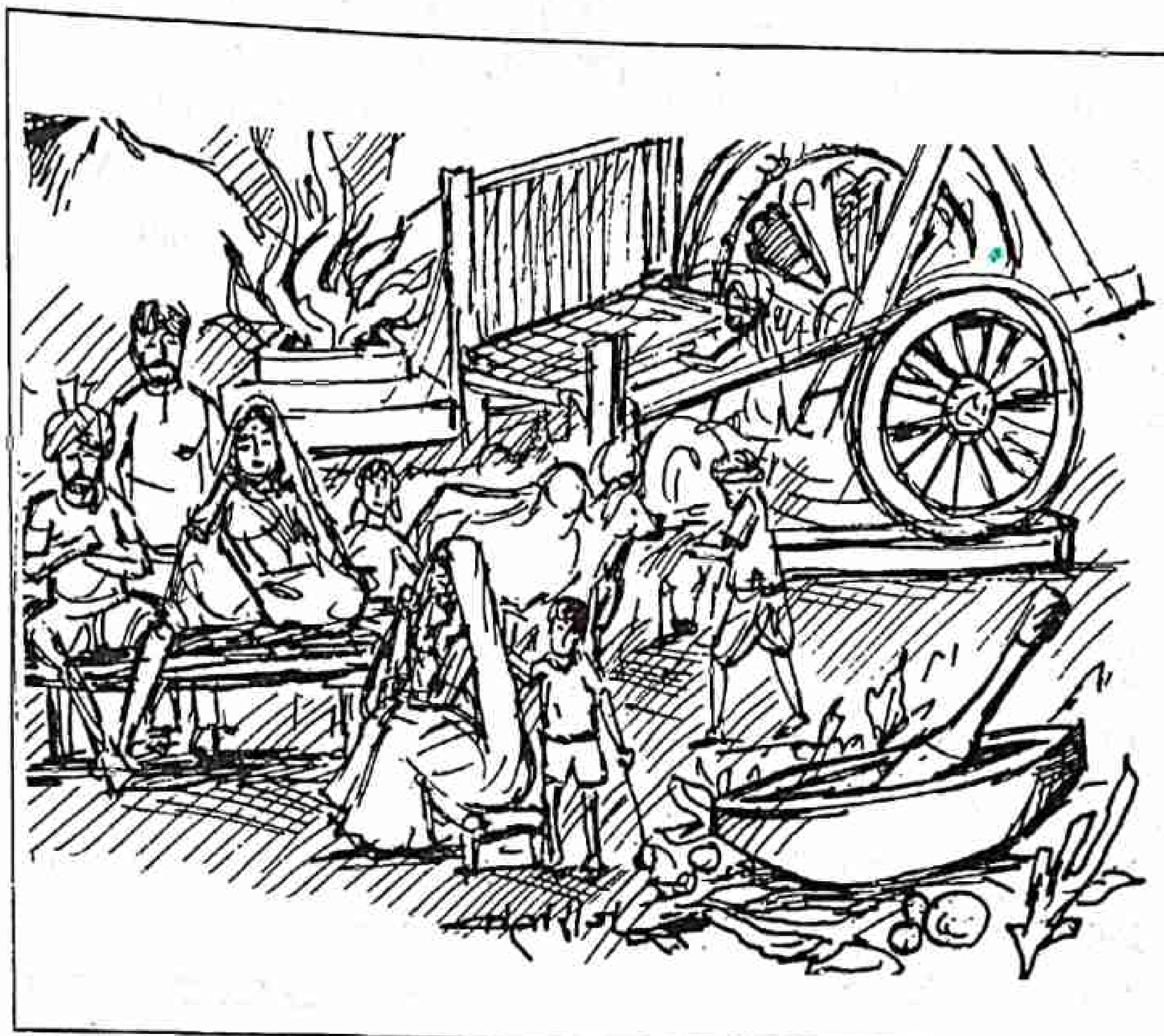

प्रत्येक राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास उसकी तकनीकी प्रगति पर निर्भर होती है। यह इसलिए होता है क्योंकि मनुष्य अपने जीवन को सुखद और आरामदायक बनाने के लिए हमेशा ही नई-नई तकनीकी को खोजने का प्रयास करता है। मनुष्य की इस प्रक्रिया से सामाजिक और तकनीकी विकास स्वतः ही हो जाता है।

यदि तकनीकी के विकास और स्वीकार्यता को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि ऐसी तकनीके ज्यादा स्वीकार्य होती है, जिनके विकल्प भी उपलब्ध होते हैं। जैसे - कृषि के विकास में उन्नत किस्मों के बीजों की सफलता का एक प्रमुख कारण इन बीजों का विकल्प उपलब्ध होना है। यहाँ यह बात भी स्वीकार्य है कि विकसित की नई तकनीको के प्रसार में उन तकनीकी से सम्बन्धित 'विक्रय पश्चात सेवा' की उपलब्धता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि विकल्प रखने वाली तकनीकी की 'विक्रय पश्चात् सेवा' आसानी से प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध हो जाती है। इन तकनीकी से जुड़े कारीगर अपनी वृतिका को सुनिश्चित और सुदृढ़ करने हेतु बहुविकल्पों वाली तकनीकी में ही कुशलता प्राप्त करना पसन्द करते है। जैसे ऑटोमोबाइल उद्योग के विकास की प्रक्रिया को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि इस उद्योग में प्रयुक्त तकनीकी ने वाहन उद्योग में क्रांति के साथ-साथ जन-सामान्य के सामने इतने विकल्प दिए कि व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार वाहन का चयन किया, इस उद्योग के प्रगति का एक कारण यही भी है।

वर्तमान संदर्भ में सूचना तकनीक के प्रसार का कारण यह है कि इसमें विकल्प की बहुत संभावना है। जैसे कम्प्यूटर के वर्ड प्रोसेसिंग से स्पष्ट होता है कि अँग्रेजी भाषा के साफ्टवेयर के कारण संभवतः इसकी उपादेयता सीमित हो सकती थी किन्तु अंग्रेजी के विकल्प के रूप में हिंदी संस्कृत व अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के साफ्टवेयर उपलब्ध होने के कारण उसकी उपादेयता बढ़ती जा रही है, दूर-संचार के क्षेत्र में इसका परिणाम देखा जा सकता है।

भारतीय समाज के तकनीकी विकास पर चिंतन करें तो हम पाते है कि तकनीकी विकास के नाम पर अपने यहाँ उपलब्ध प्राचीन तकनीकी की सांस्कृतिक उपादेयता को समझने का प्रयास नहीं किया गया। इस देश के योजनाकारों ने इस देश में उपलब्ध तकनीकी को छोड़कर अन्य देशों में विकसित की गई तकनीको का अंधानुकरण करने के प्रयास किया। इस दौरान लोगों के सांस्कृतिक और सामाजिक भावना का ध्यान नहीं रखा गया, फलस्वरूप ऐसी तकनीकी को जनसमर्थन नहीं मिला और ये तकनीके आंशिक रूप से ही सफल साबित हुई। इसके साथ-साथ हम यह भी कह सकते है कि इस देश में योजनाकारों और प्रशासकों ने समुचित विकास हेतु

Scanned with OKEN Scanner

आवश्यक व स्वीकार्य तकनीकी को देश में विकसित करने की आवश्यकता पर जोर नहीं दिया और दूसरे देशों में विकसित तकनीकी को आंशिक परिवर्तन के बाद स्वीकार करने का प्रयास किया। ऐसी तकनीकें विकल्प के अभाव में मात्र सीमित अवधि के लिए स्वीकार की गई और जैसे ही लोगों को अपनी आवश्यकता और सुविधानुसार विकल्प मिला, तत्काल ही उन नए विकल्पों को स्वीकार कर लिया गया।

उपरोक्त विश्लेषणों के आचार पर कुछ महत्वपूर्ण बातें सामने आती हैं। जिन्हें निम्नवत रखा जा सकता है –

- सर्वप्रथम देश में तकनीकी के विकास के लिए एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाए, जिसमें सभी के खुशहाली के लिए शोधपरक विकास कार्यों पर समुचित निवेश हो, जिससे भविष्य में समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखकर वैज्ञानिकों द्वारा तकनीको का विकास देश में ही किया जाना संभव हो सके।
- वैज्ञानिकों को इस देश की बहुआयामी सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर तकनीकी के विकास के साथ-साथ उनके विकल्पों पर भी ध्यान देना होगा, इससे विभिन्न समाज के लोग अपनी परिस्थितियों के अनुकूल तकनीकी को स्वीकार करेंगे, जिससे तकनीकी के विकास के साथ ही उनका प्रसार भी होगा।
- तकनीकी के विकास के साथ शिक्षा के भी विकास पर ध्यान दिया जाए, जिससे की तकनीको के कार्य प्रणाली का जनसामान्य में प्रसार हो।
- जिन तकनीकी से पर्यावरण को क्षति पहुँच रही हो उसे रोकने तथा उनके स्थान पर नई तकनीकी को खोजने का प्रयास होना चाहिए।

इससे 'सर्वे सन्तु निरामया:' के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। ■

(पृष्ठ १९ का शेष.........)

विश्व व्यापार संगठन के साथ हुए कृषि-अनुबंध......

में इन दोनों ही बिन्दुओं पर गंभीर विचार करने को कहा गया है।

'विशेष उत्पाद' AMS का आंकलन करने के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादकी 'अनुप्रयुक्त प्रबंधकीय कीमत' और 'बाह्य कीमत' (External Reference Price) दोनों पर विचार करना चाहिए। 'अनुप्रयुक्त प्रबंधकीय कीमत' को 'बाह्य कीमत' में से घटाकर आंकलन करना चाहिए। यदि किसी समय होता है कि "बाह्य कीमत' (उत्पाद की अंतरराष्ट्रीय कीमत है) अनुप्रयुक्त प्रबंधकीय कीमत से कम होती है तो ऐसी स्थिति में 'विशेष उत्पाद' नकारात्मक माना जाएगा। इसलिए इस प्रस्ताव में यह माँग की गई है कि जिस दौरान 'विशेष उत्पाद AMS' की गणना की जा रही हो उस समय 'नकारात्मक विशेष उत्पाद' को एक सकारात्मक गैर-उत्पाद के रूप में मान लिया जाए।

इस प्रकार यह प्रस्ताव सभी प्रकार के दोषों को सुस्पष्ट कर चुका है। यद्यपि इन प्रस्तावों को आपसी बातचीत के लिए तैयार किया गया है। हमें इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारी यह बातचीत सार्वभौमिक रूप से है।

जिसमें स्वदेशी आदर्श के लिए एक दृढ़तापूर्वक और विश्वास के साथ सहयोग की आवश्यकता है। यदि भारतीय जनता ऐसा दृढ़विश्वास इस समझौते (Negotiation) के दौरान प्रदर्शित करती है तो वह अवश्य ही कुछ प्राप्त होता है। अन्यथा यह प्रस्ताव केवल एक अच्छा 'प्रारूप' बनकर ही रह जाएगा। ■

(पृष्ठ २८ का शेष.........)

सक्षम महिलाओं को

औचित्य नहीं है। पति-पत्नी में जो सक्षम हो और जिसका नेतृत्व दूसरे को स्वीकार हो उसे कर्ता बनाना चाहिए। इस दृष्टि से राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति में महिलाओं पर परंपरागत प्रतिबंधों को तोड़ने की बात उचित लगती है। परंतु इससे परिवार के अंदर बराबरी की मांग का खंडन होता है। परिवार में तो असमानता रहेगी ही। एक को नेतृत्व करना होगा और बाकी को अनुसरण करना होगा तब ही परिवार चलेगा। इसलिए नीति में परिवार के अंदर बराबरी की मांग अनुचित हैं।

नीति की धारा ५.१ में कहा गया है कि "अंतर्पारिवारिक भेदभाव की कठोर वस्तुस्थिति को देखते हुए गरीब महिलाओं की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए।" यह मान लिया गया कि गरीब घरों के कर्ता महिलाओं के प्रति भेदभाव करते हैं। सरकार चाहे कुछ भी करे यह अंतर्पारिवारिक भेदभाव रहेगा ही। कार्ली फियोरीना के पति के प्रति भी ऐसा ही भेदभाव हो रहा है। इसका हाल यह है कि कर्ता को सर्वहित में निर्णय करने की हिदायत दी जाए। राज्य के हस्तक्षेप से तो यह समस्या बिगड़ेगी। इसी तरह धारा ६.७ में कहा गया कि परिवार के अंदर लड़कियों के प्रति पोषण में भेदभाव को दूर किया जाएगा। यानी अब सरकार परिवार के कर्ता की भूमिका निभाएगी और तय करेगी कि किस बच्चे को खाने के लिए क्या मिलेगा। सबको बराबर भोजन मिलेगा। सदस्यों की आवश्यकताओं को नहीं देखा जाएगा। यह सब गलत बातें है। परिवार बराबरी से नहीं बल्कि दयालु असमानता से चलता है। यदि कर्ता कठोर है तो उसका एकमात्र समाधान यही है कि उसे दयालु बनाया जाए। कठोर असमानता का हल कठोर समानता नहीं बल्कि दयालु असमानता ही है। इसी सिद्धान्त को लागू करने से परिवार बचेगा और देश की जनता को सुख मिलेगा। बराबरी से तो परिवार और समाज दोनों विखंडित हो जाएँगे। ■

Scanned with OKEN Scanner

विश्व में दिन प्रतिदिन प्रतिपक्षी शक्तियाँ उद्विग्न होकर उभरती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में सुग्रीव और विभीषण राज्य से निष्कासित होकर श्रीराम के साथ आ मिलेंगे। बंदर-भालूओं की सेना सोने की लंका को मिट्टी में मिला देगी।

वैश्विक अर्थ-युद्ध में श्रीराम का आश्रय

■ डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

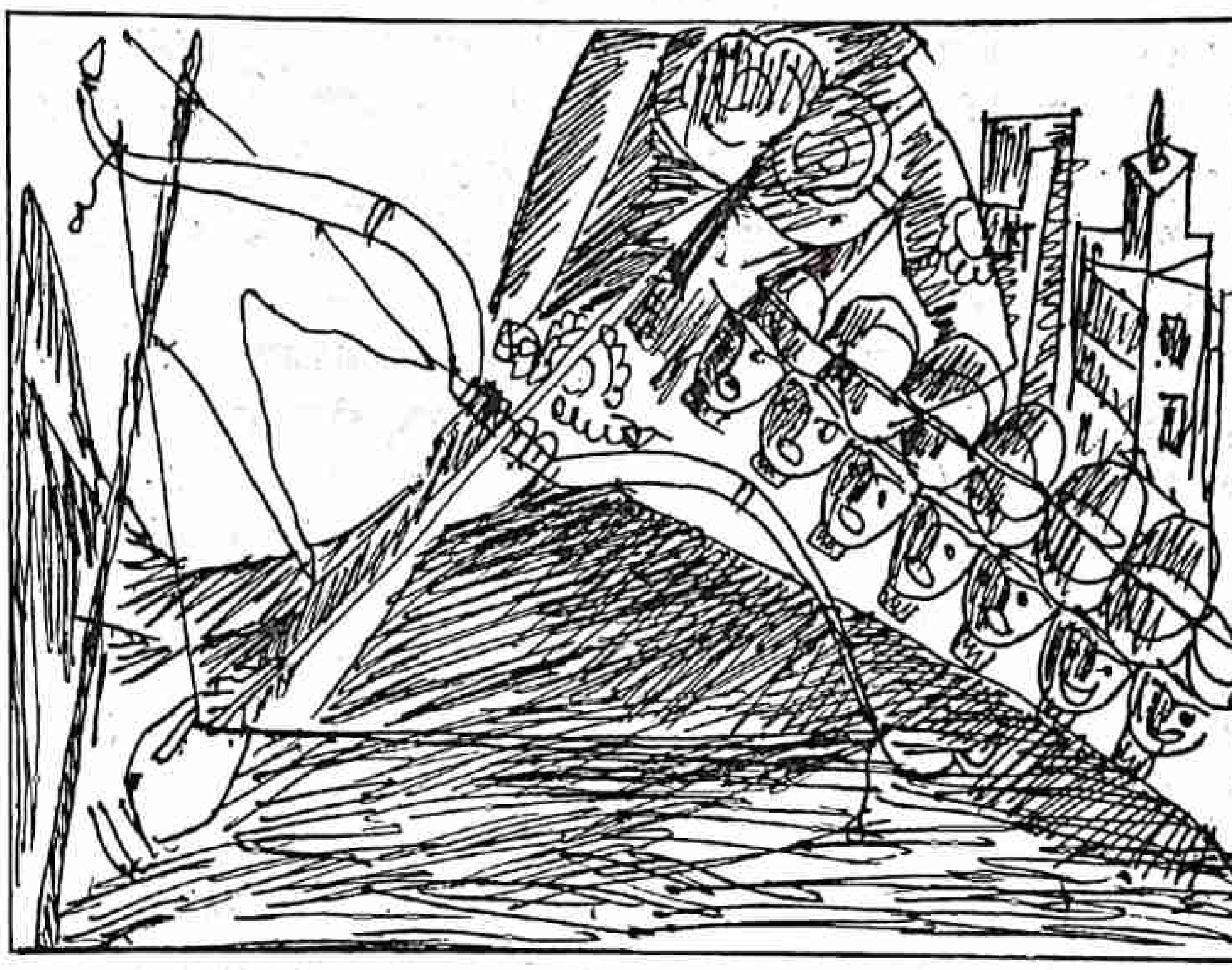

उस दिन (१६ अप्रैल २००१ को) रामलीला मैदान, दिल्ली में देश के कौने-कौने से आए लगभग एक लाख से अधिक मजदूरों की सभा को सम्बोधित करते हुए श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने जब प्रसंगवश श्रीराम चरित मानस की एक चौपाई उधृत किया, मैं उसे सुन विस्मय से भर उठा।

मेरे विस्मय का कारण यह नहीं था कि उधृत चौपाई –

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा।
देखि बिभीषण भयऊ अधीरा।।

को पहली बार उधृत होते सुन रहा था - गाँव में खेत की मेड़ के झगड़े में, जमीन की कब्जेबारी के मामले में भी राम-रावण के युद्ध का प्रसंग उधृत हो उठता है। छात्र संघ के चुनाव में सफल होने के लिए जातियों के समीकरण बनाने वाले एक तीरंदाज छात्रनेता को मैंने रामकथा का प्रयोग करते देखा था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जब वह नेता अपना प्रपंच फैला रहा था, मेरे एक मित्र ने मुझ से कहा -- आप रावण हैं, और मैं रामजी हूँ, मैं आपको मारूँगा।' एकाएक मैं समझ नहीं पाया कि मेरा मित्र मुझसे क्या कह रहा है। उसने मुझे समझाया कि इन दिनों विश्वविद्यालय में कैसी-कैसी हवा फैलाई जा रही है। बात समझते ही मैंने कहा, इस तरह के भावात्मक विद्वेष फैलाने के लिए रामकथा का दुरुपयोग करना महापाप है। जाकर बता देना उस नेता से कि श्रीराम किसी जाति की सीमा में नहीं आते। वह किसी राजा के पुत्र नहीं हैं। जिस श्रृंगी ऋषि ने उनके आविर्भाव का यज्ञ किया, उनका जन्म भी सामान्य नहीं है कि वह वर्ण के रूढ़ि रूपों में अथवा तथाकथित जातियों में बाँधे जा सकें। मेरे मित्र ने नेता को शास्त्र की बातें उचित भाषा में सुना दिया था। नेता चिंतित हुआ, मुझे इसकी सूचना भी प्राप्त हुई थी।

देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में 'रघुपति राघव राजाराम' और रामराज्य की संकल्पना की क्या भूमिका रही है, इससे सभी परिचित हैं। रामकथा का आधार लेकर रचे गए साहित्य भी जाने पहचाने हैं भारत की धार्मिक सांस्कृतिक अस्मिता के रचाव में रामकथा की भूमिका प्रत्येक काल में अत्यन्त परिवर्त्तकारी और महत्वपूर्ण रही है, इस तथ्य को विद्वान भली भाँति जानते हैं। मध्यकाल का राष्ट्रव्यापी भक्ति आन्दोलन भी इसका प्रमाण है। लेकिन रामकथा की ये ऐतिहासिक भूमिकाएँ भारतीय जनजीवन के भीतर की हैं। इसकी वैश्विक भूमिका को आज के आर्थिक विश्व युद्ध के संदर्भ में देख मैं उस दिन विस्मित हुआ था।

विश्लेषक बताते हैं कि सम्पन्न देशों में उपभोक्तावाद के प्रभाव से परिवर्त्तनकारी चेतना का ह्रास हो चुका है। पूँजीवाद की दानवी शक्ति से लोहा लेने की शक्ति पश्चिम के लोगों में नहीं है। इन दानवी शक्तियों से मुक्ति का संघर्ष तीसरी दुनिया के देश कर सकते हैं। पर जिनकी धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना केवल सुख भोग तक सीमित है, स्वर्ग का सुख ही जिनका अन्तिम लक्ष्य है, जो त्याग तप और ब्रह्मचर्य आदि आचरणों को व्यर्थ मानते हैं जिनके लिए ऐहिक और इन्द्रिय सुख ही सर्वोपरि है, जिन्हें पुनर्जन्म में कोई आस्था नहीं, उन्हें महाकाल के सतत परिवर्त्तन के क्रांति-चक्र का माध्यम बनने की क्या आवश्यकता। उत्थान-पतन उनकी नियति है। इसीलिए उनकी सभ्यताओं का अन्त भी अप्रत्यासित नहीं है। सतत परिवर्त्तन से जड़ताओं पर कुठाराघात करते रहने का कार्य तो भारतीय मनीषियों का रहा है। यह कार्य अभाव के आक्रोश में उठ खड़े होने वाले देशों के लोग नहीं कर सकते, उन्हें प्रलोभनों की मार तोड़कर रख देगी।

Scanned with OKEN Scanner

उसदिन रामलीला मैदान में श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने युद्ध के साधनों से रहित श्रीराम को देख विभीषण के अधीर हो उठने का प्रसंग तब सुनाया था, जब उनसे लोगों ने पूछा कि विश्व की इतनी बड़ी शोषक उत्पीड़क शक्तियों से लड़ने के लिए आपके पास शक्ति क्या है? बिल्कुल विभीषण के प्रश्न की भाँति है यह प्रश्न भी –

'नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना।
केहि विधि जितब वीर बलवाना।।'

प्रभु आपके पास न रथ है, न तन पर कवच है और न पाँव में जूते। आप किस प्रकार रावण जैसे बलवान को जीत पाएँगे? इस प्रश्न का उत्तर भी श्रीराम के शब्दों में ही हो सकता है – **'जेहि जय होई सो स्यंदन आना'**। विजय दिलाने वाला रथ दूसरे प्रकार का होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने बड़े सुन्दर रूपक से इस रथ का वर्णन किया है – शौर्य और धैर्य उस रथ के दो पहिए हैं, सत्य और शील उसके ध्वज, बल विवेक इन्द्रिय संयम, परोपकार – ये चार उस रथ के घोड़े हैं जो क्षमा-दया और समता रूपी बागडोर से रथ में जुते होते हैं। ईश्वर की आस्था उस रथ का सारथी है। वैराग्य ढाल के समान, संतोष तलवार की भाँति, दान परशु, बुद्धि अजेयशक्ति, श्रेष्ठ विद्वान कठोर धनुष, स्थिर शुद्ध मन तरकस, राम-यम-नियम विप्र और गुरु की पूजा अभेद्य कवच के सदृश्य हैं। विजय के यही श्रेष्ठतम साधन हैं। ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास है उसे लड़कर जीतने के लिए शत्रु नहीं मिलते। विभीषण का संदेह दूर हुआ।

श्री ठेंगड़ी ने अमेरिका के जनजीवन में व्याप्त अधैर्य का उल्लेख किया। उन्होंने कहा, अमेरिका के लोग एक वर्ष भी सुख साधन से दूर नहीं रह सकते। उनके क्रेडिट कार्ड पर अग्रिम व्यय चढ़ा होता है। हम अपनी छोटी आय में भी कुछ न कुछ बचत करते हैं। हम अपनी सुख-सुविधाओं को त्याग सकते हैं। विजय किसी साधन से नहीं मिलती, विजय की मानसिकता होती है। विजय की महाशक्ति जिस मानसिकता में हो सकती है उसकी संरचना क्या होगी? आज के समय में हम इस मानसिकता की व्याख्या किस आधार पर कर सकते है? इस मानसिकता का एक छंदस् आधार है – अगस्त,ऋषि द्वारा श्रीरामचंद्र को दिया हुआ 'आदित्य हृदय' का विज्ञान। आदित्य हृदय एक पूज्य स्तोत्र है। यह स्तोत्र जिस शक्ति

केंद्र से उपासक को जोड़ता है, वह शक्ति केंद्र है सूर्य। जिस राष्ट्र की मनोरचना में सूर्य के अपार शक्ति स्रोत का जितना गहरा विज्ञान उतरा होगा, वह उतना ही अजेय होने का दावेदार बन सकता है। यह सच है कि अमेरिका के पास स्टारवार की क्षमता विकसित हो गई है वह अपने उपग्रह से किसी देश के प्रक्षेपास्त्र को धराशायी कर सकता है। पर इन यंत्रों को संचालित करने वाले देश की मानसिकता क्या है? यह भी विचारना होगा। दिखाई यह दे रहा है कि वह तमस में डूबा हुआ है। यदि वह दूसरे देशों के जनजीवन को शिकार करना छोड़कर केवल अपनी सीमा में रहें तो उनका अंतर्विरोध उन्हें स्वयं समाप्त कर देगा। जैसे पाकिस्तान युद्ध का कारोबार बंद कर दे तो वह अपने ही आग में जल जाएगा। उसकी मजबूरी बन गई है कि वह आतंक का धुँआ उठाता रहे, तभी उसका अस्तित्व टिका रह सकता है। इस प्रकार की विवशता दूसरे देशों की भी है। अमेरिका और चीन की भी यही दशा है। लेकिन इस मानसिकता का भी अन्त है। काल देवता के पदाघात से इस जीवन-विरोधी गति का भी अंत सुनिश्चित है। उन सभी सभ्यताओं और तथाकथित संस्कृतियों का अंत सुनिश्चित है जो हिंसा, आतंक, शोषण-उत्पीड़न में शक्ति अर्जन का मार्ग देख रहे हैं। यह प्रवृत्ति धरती पर रहने की नहीं है धरती से समाप्त होने की है। भोजपुरी क्षेत्र के गाँवों में कहा जाता है,'का धधाइल बाड़े, बसुधरा पर ना रहबे का? क्या 'धधाए' हुए हो, वसुंधरा पर नहीं रहोगे क्या? 'धधाना' अच्छा नहीं होता। इससे अस्तित्व का अंत हो जाता है। धधाने का अर्थ क्या है? हम इसे आर्थिक विश्व युद्ध के लिए उधत्त हुए देशों की मति-गति में देख सकते हैं। बड़ा उतावलापन है इन देशों में। लगता है पूरे विश्व को ये आर्थिक शक्तियाँ निचोड़ कर पी जाएँगी। यह प्रवृत्ति देशी हो या विदेशी, उन्हें साफ समझ लेना चाहिए कि यह अपनी मौत का कुआँ खोदने के समान है। क्योंकि इनके शोषण का फैलता खूनी पंजा प्रकृति की व्यवस्था तक को प्रभावित करने लगी है। प्राकृतिक आपदाओं की मार विश्व जीवन के ध्वन्स का संकेत देने लगी है। धरती पर अनाचार सीमा पार कर गई है। साधनहीन लोगों की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ रही है, आर्थिक विकास का ग्राफ ऊपर चढ़ रहा है। ऐसा आर्थिक विकास जो करोड़ों लोगों का जीवन तबाह कर दस पाँच लोगों को मोटा ताजा बना दे, इसका परिणाम क्या होगा? बार-बार लोकतंत्र में आस्था व्यक्त कर रहा अमेरिका कितना लोकतांत्रिक है, इसका पोल खुलता जा रहा है। विश्व में दिन प्रतिदिन प्रतिपक्षी शक्तियाँ उद्विग्न होकर उभरती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में सुग्रीव और विभीषण राज्य से निष्कासित होकर श्रीराम के साथ आ मिलेंगे। बंदर-भालूओं की सेना सोने की लंका को मिट्टी में मिला देगी। आसुरी शक्ति श्रीराम के मानस में कौंधते आदित्य हृदय से क्या द्वंद्व कर

पाएँगी। प्रकाश के सामने घना से घना अंधकार तिरोहित हो जाता है। उनके उपग्रह-युद्ध के संचालन की मानसिक शक्तियाँ उल्टकर स्वयं पर प्रहार करने लगेंगी। कई बार दूसरों को आक्रांत करने वाली ताकतें आत्मघात में शांति अनुभव करती हैं। रावण को श्रीराम से युद्ध करने में अपनी मुक्ति का अनुभव होने लगा था। उसे भौतिक सुख साधनों के संताप का ज्ञान हो चुका था। यह मानसिकता भी अपराधियों में स्वाभाविक ढंग से उत्पन्न होने लगती है जब वह धर्म के सम्मुख खड़े होते हैं, सत्य के सामने आते हैं।

इसी शक्ति के प्रतिनिधि हैं – श्री राम। विश्व मानस को वास्तविक धर्म के स्वरूप का परिचय रामकथा से मिलेगा। इसी से अजेय शाश्वत संस्कृति का ज्ञान भी हो सकता है। जिस प्रकार श्रीमद्‌भगवद् गीता और योग को विश्व ने औषधि समझ कर स्वीकार किया है, रामकथा भी विश्वभर के निस्सहाय हुए लोगों को संघर्ष संगीत बन सकती है। क्योंकि राम कथा का उत्स एक ऐसा प्रसंग है जिसमें बधिक के बाण से एक काम मोहित पक्षी के क्षत विक्षत हो जाने पर आदि कवि बाल्मीकि के मुँह से बधिक के लिए शाप निकल पड़ा -'तुम कभी प्रतिष्ठित नहीं हो पाओगे हत्यारे, तुमने एक पक्षी को उस समय मारा है जब वह सृष्टि रचना में डूबा हुआ था।' इस शाप ने अभी तक किसी भी व्याधे को, हत्यारे को प्रतिष्ठित होने नहीं दिया। अत्याचारियों को सदा अपमानित करने वाला यह प्राकृतिक दण्डविधान उस समय अतिक्रमित हो सकता है जब शोषण उत्पीड़न और आत्महत्या तक कर लेने पर मजबूर बनाने वाली आर्थिक शक्तियाँ प्रतिष्ठित हो जाएँगी। आज भी जो अन्याय हो रहे है उन्हें भी अपने नारे विश्व हित – जनहित के नाम पर बनाने पड़ते हैं। आर्थिक शोषण की व्यवस्था आर्थिक सुधार के नाम से चलाई जा रही है। पवित्र और स्वच्छ वाक्यों से ही मुँह ढक कर शोषण के तंत्र भी पनपते हैं। किसके डर से नैतिकता की घुंघट इन पिशाचों के चेहरे पर है?

आदिकवि को शाप के विषय में पूरी दुनिया तो नहीं जानती, यदि जानती भी होगी तो मानती कहाँ है, पर एक अज्ञात डर है। यही डर उन्हें आक्रांत करती रहती है जिससे तमस का घना अंधकार शोषक सभ्यताओं के चेहरे पर छाने लगता है और व्याधों का अंत होता रहता है। प्रकृति और पर्यावरण के निर्मम शोषण की प्रवृत्ति भी व्याध प्रवृत्ति है। ऋषि का शाप इसे भी कभी प्रतिष्ठित नहीं होने देगा।

वे नये-नये आगे बढ़े देश हैं जिनके बौद्धिक इतिहास का प्रारंभिक चरण चल रहा है। वे रोज दिन की गलतियों के दुष्परिणामों से अभी सीख ले रहे हैं। भारत में भी व्याकुल जीवात्माएँ हैं, जो बाहरी सभ्यताओं और समृद्धि को विकास का आदर्श मानकर उनके पीछे भाग रही हैं। उन्हें अपने अंत का गणित अवश्य समझ लेना चाहिए। भारत की विकास यात्रा सुनियोजित गति से यहाँ की प्रकृति के तद्रूप व्याघ प्रवृत्ति से अलग हटकर होनी चाहिए, अन्यथा ऋषि का शाप लगेगा।

आदिकवि का शाप हमारी अमोघ शक्ति है। इसे समझने की आवश्यकता आ गई है। आज हमारी बौद्धिक थाती वैश्विक परिस्थिति में प्रासंगिक होती जा रही है। हमारे साहित्य और संस्कृति का सत्य विश्व जीवन के लिए अमृत बनता दिख रहा है। हमारे श्री राम विश्व जीवन के एकमात्र उद्धारक हैं। यह दृश्य उस समय प्रत्यक्ष दिखने लगेगा जब अपनी वैचारिक विरासत के बदौलत हमारा देश करोड़ों शोषित जनता को साथ लेकर विश्व व्यापार संगठन के किले को उखाड़ फेंकेगा।

मेरे एक अंतरंग मित्र ने मुझसे कहा – स्वदेशी आंदोलन का यह वैश्विक दृष्टिकोण हमें पीछे धकेल देगा। गुट निरपेक्ष देशों की विदेश नीति ने हमें क्या दिया? हम पर संकट आया तो कोई साथ नहीं था। जो स्वयं भुक्खड़ देश हैं उनसे दोस्ती करने से क्या मिलेगा? मेरे मित्र पं. जवाहरलाल नेहरू के रोमान्टिक युग की राजनीति का संदर्भ ले रहे थे, उन दिनों की परिस्थितियाँ विश्व स्तरीय आवश्यकता का तापमान नहीं बन पायी थी। इसके अलावा कम्युनिस्टों ने पूँजीवादी शोषण के विरुद्ध लड़ाई खड़ी की थी और वे सफल भी हो रहे थे। उनके पतन के बाद पूँजीवादी शक्ति सर्वोपरि हो गई। तब भी शोषक और शोषितों के बीच वैश्विक शक्तियों का ध्रुवीकरण हुआ था। इन दोनों में किसी के साथ साफ-साफ नहीं रहकर भारत – 'हूँ नहीं हूँ' – की संशयी भूमिका निभा रहा था। इसलिए विपत्तिकाल में इसके साथ कोई नहीं दिखा। लेकिन आज हम शोषकों के सीधे खिलाफ खड़े होने की बात कर रहे हैं। एक तरफ सोने की लंका और दैत्य सेना होगी, दूसरी ओर श्रीराम की सेना होगी, विभीषण और सुग्रीव, अंगद, जामवंत और महावीर होंगे। सम्पूर्ण प्रकृति को संचालित करने वाले सूर्य का अकूत ऊर्जा स्रोत-आदित्य हृदय होगा, जिस अमोघ विद्या का बोध ऋषि अगस्त ने दिया है। मित्र के चेहरे पर मैंने मुस्कान देखी, उन्होंने कहा, पता नहीं आप किस आदित्य हृदय की बात करते हैं? मैंने कहा, मैं इतना तो अवश्य जानता हूँ कि तीसरी दुनिया के पास प्रकृति की दी हुई अकूत सम्पदा है। सबसे अधिक सूर्य रश्मियों की ऊर्जा है। संभव है आने वाले विश्व में सबसे आगे वही देश रहें जिनके पास सबसे अधिक सौर ऊर्जा का स्रोत हो। मोटा-मोटी समझ लीजिए, यही आदित्य हृदय है।

काल प्रवाह विश्व को चाहे जिस दिशा में ले जाए, पर हमें अपनी सांस्कृतिक शक्ति की अनुभूति कदम-कदम पर होने लगी है। हमारा धर्म बोध, हमारी बौद्धिक सम्पदा हमें बार-बार झकझौर कर जगाने में लगी है – 'यह देख – यह देख तुम्हारे प्रतिकूल क्या-क्या खड़ा हो रहा है।' जिन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत का ज्ञान नहीं, वे भी समय के प्रवाह में भागते हुए जब ठोकर खाकर गिरते हैं दौड़कर अपनी विरासत पकड़ ले रहे हैं। हमारी बौद्धिक थाती की प्रासंगिकता समाधान के रूप में तेजगति से बढ़ती जा रही है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि आज फिर आर्थिक विश्व युद्ध में हमारी मानसिक शक्ति का स्रोत बनकर भगवान् श्रीराम सामने खड़े होंगे। अपने-अपने स्वर्ग की शहद में पंख डूबाए पड़े दुनिया के सुखी लोग विराट जनसमूह की शक्ति के रूप में वन-वन भटकते श्रीराम का शौर्य नहीं पहचान सकते, उन्हें मदहोशी में कुछ भी पता नहीं कि कोई निशिचरनिकर निवास लंका लाख सुरक्षा व्यवस्था करने पर भी दुर्भेद नहीं हो पाती। उसके सारे तिलस्म श्रीराम को हृदय में बैठा रखने वाले हनुमान जी के सम्मुख खुलने लगता है। धन्य है हमारी बौद्धिक विरासत, ऋषियों का साहित्य। यही हमें और हमारे विश्व को निरंतर धर्म के मार्ग पर लेकर चल सकता है। इन्हीं शास्त्रों से निसृत धर्म बोध अर्थ के कालकूट का शमन कर सकता है। अर्थ और काम के नियामक धर्म का बोध ही आज के आर्थिक विश्व युद्ध का संताप मिटा सकता है। ■

Scanned with OKEN Scanner

अब माँ के दूध पर भी हो रहा है हमला

■ सुषमा शर्मा

व्यवसाय की निन्दनीय प्यास इस हद तक बढ़ती जाए कि वह देश के कर्णधारों को कमजोर, रोगी अल्पायु बनाने लगे तो प्रत्येक देशवासी को सोंचना होगा। इसी सोंच के लिए बाध्य करती है शिशु,आहार बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनी नेस्ले।

सेरलॉक इत्यादि शिशु आहार बेंचनेवाली विदेशी कंपनी नेस्ले लगातार प्रयास करती चली आ रही है कि माताएँ शिशुओं को अपना दूध पिलाना छोड़कर उसके शिशु आहार का उपयोग करें। जब से स्वस्थ शिशु के लिए सभी विशेषज्ञों ने यह घोषित कर दिया है कि माँ के दूध की तुलना में कोई शिशु आहार उपयुक्त नहीं है, शिशु आहार का व्यवसाय करने वाली कंपनियाँ किसी न किसी प्रकार चिरकाल से सर्वज्ञात इस धारणा को तोड़ने में लगी है। व्यापारिक समितियों की बैठक हो, या विज्ञापन अथवा नर्सों के वेश में प्रचार करने वाली युवतियाँ हो इनके द्वारा किसी न किसी तरीके से लोगों के दिमाग में यह बैठने का प्रयास किया जा रहा है कि वे इनका उपभोक्ता बन जाए। ये व्यवसायी कानूनी बाध्यता बनाने के प्रयास में भी लगे रहते है। अभी नेस्ले ने प्रस्ताव किया था कि चार महीने तक ही माताएँ शिशु को अपना दूध पिलावे। इसके बाद वे शिशु को उन कंपनियों का आहार दें। अच्छा हुआ कि भारत के स्वास्थ्य मंत्री ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। पूरा भारतीय जनजीवन इस बात से परिचित है कि अधिक से अधिक दिनों तक बच्चे को माँ का दूध मिलने पर बच्चे का स्वास्थ्य श्रेष्ठ होता है, रोगों के कीटाणुओं से लड़ने की ताकत आती है। निरोग और प्रसन्न बालकों के होने के लिए माँ का दूध अमृत है।

हमारे समाज में पारंपरिक ज्ञान के रूप में यह सबको जानकारी है कि साहस, कर्मठता और उन्नत संस्कार के लिए माँ के दूध को श्रेय दिया जाता है। माँ का दूध ही युद्ध भूमि में पुरुष की वीरता बनकर सामने आता है। भारत के जिन वीर सपूतों की गौरवशाली वीरता का इतिहास स्वर्ण अक्षरों में अंकित किया जाता है वे सपूत वीर माताओं के दूध से पले। उन्होंने माँ के दूध की लाज रखी है। वे लोग आज भी डिब्बाबंद दूध पर नहीं पलते है जिनके गर्म खून से भारत माता के आँचल की किनारियाँ रंगी जाती है। सीमा पर खड़े जवानों का लहू जिस दिन नेस्ले के डिब्बाबंद दूध से बनेगा, उस दिन देश केवल आर्थिक शोषण का शिकार नहीं होगा, हमारी सीमा-सुरक्षा भी कमजोर हो जाएगी।

यह दुर्भाग्य है कि आर्थिक शोषण

के षड्यंत्रकारी अनेक छल-कपट से भारत के आहार-विहार और आचार-विचार को नष्ट करने पर तुले हुए हैं और इस हस्तक्षेप को सरकार कठोर दण्ड विधान करके रोक नहीं पा रही है। सरकार ने इन कंपनियों से यह आशा लगा रखी है कि इनके द्वारा आर्थिक उन्नति होगी। आर्थिक उन्नति का क्या मतलब, जब देश का अस्तित्व खतरे में पड़ जाए। इस परिस्थिति में देशवासियों को अपने पारंपरिक ज्ञान का सहारा लेना और जागरूक होना बहुत जरूरी है। अन्यथा हमारी समाज व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी। माँ की स्वतंत्रता पर किसी प्रकार अंकुश लगाना, अपने आप में अप्राकृतिक सोंच है और एक सामाजिक अपराध भी। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस समय देश की जीवन शैली को नष्ट भ्रष्ट करने के प्रयास में लगी हैं तो हमारी धार्मिक संस्थाओं को भी इसके विरुद्ध उठ खड़ा होना जरूरी है। वास्तव में ये कंपनियाँ आज की पुतना हैं जो अबोध शिशु को छाती से लगाकर उन्होंने मौत की नींद सुला देना चाहती है। यशोदा के वात्सल्य को बार-बार साहित्य और कथा प्रवचनों से लोकमानस तक पहुँचाने वाले संतों-महात्माओं को पुतना रूपी दानवी कंपनियों के अंत का व्याख्यान करना जरूरी हो गया है, तभी हमारा देश बच सकता है।

हमारी परंपरा में माँ के दूध का स्थान कितना ऊँचा रखा गया है इसके आगे आज भी हम नतमस्तक होते है। इस पर हस्तक्षेप करने का साहस करना हमारे अस्तित्व के साथ शत्रुता है। इन शत्रुओं के मिठ्ठे युद्ध को सामान्य ढंग से नहीं लिया जाना चाहिए। संभव है ये कंपनियाँ अपने शिशु आहार की बिक्री के लिए वैज्ञानिक शोधों का बहाना निकाले। ये शोध पत्रों में बतावे कि इतनी माताओं के दूध का परीक्षण किया गया और उसमें इस प्रतिशत में रोग फैलाने वाले दूध पाये गये। हो सकता है, यह प्रचार के लिए भारी साधनों का उपयोग किया जाए। और इसके बाद शिशुओं को भी अबोध वय से ही उपभोक्ता बना दिया जाए। हमें आज यह जिज्ञासा करनी जरूरी है कि इनके आहार व्यवसाय की विश्वसनीयता क्या है? इनकी पौष्टिकता का पैमाना और शुद्धता का माप क्या हमारे अनुरूप है? भोजन के मामले में शायद अपना समाज इतना पराश्रित कभी नहीं हुआ था। जितना इस समय लगातार दबाव देकर बनाया जा रहा है।

हमारी संस्कृति हमेशा आहार शुद्धि को महत्व दिया है। किसी दूसरे द्वारा पकाए हुए भोजन को बिना विचारे ग्रहण करना हमारे आचार विचार में नहीं रहा है। हम शुद्ध विचार के साथ भगवान को समर्पित करके भोजन में तुलसी-दल या विल्वपत्र डालकर प्रसाद रूप में उसे ग्रहण करते रहे हैं। पर आज यह शुद्धता का परम विज्ञान केवल आस्था बनकर रह गई है। आहार का दोष कैसे दूर होता है इस विषय में विचार करने की एक चुनौती पुनः हमारे सामने आ चुकी है। क्योंकि शिशु आहार की तरह ही विदेशी कंपनियों द्वारा बनाया एक खास गंध वाला आटा, आयोडीनयुक्त नमक, जीन सम्वर्द्धित अन्न, फल, सब्जियाँ भी बाजार में आ चुकी हैं। जिनकी कोई गारंटी नहीं है। इसके खिलाफ आज कई देशों में उपभोक्ताओं के मोर्चे सड़कों पर उतर रहे हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में हम अपनी रक्षा के लिए जागरूक हों, बस यही एक रास्ता है। ■

हमारी परंपरा में माँ के दूध का स्थान कितना ऊँचा रखा गया है इसके आगे आज भी हम नतमस्तक होते है। इस पर हस्तक्षेप करने का साहस करना हमारे अस्तित्व के साथ शत्रुता है। इन शत्रुओं के मिठ्ठे युद्ध को सामान्य ढंग से नहीं लिया जाना चाहिए।

सिगरेट-बीड़ी के धुएँ में चार हजार खतरनाक रसायन

विश्व तम्बाकू दिवस की पूर्व संध्या पर विश्व स्वास्थ्य संगठन के क्षेत्रीय निदेशक उटोन मुचरार राफेई के बताए अनुसार तम्बाकू में चार हजार खतरनाक रसायन होते हैं जो सिगरेट के धुए में शामिल होते हैं। धूम्रपान करने वाला इन खतरनाक धुएँ से प्रदूषण फैलता है। इसके रोकथाम के लिए धूम्रपान नहीं करने वाले आगे आवें और रोग से समाज को बचावें। यह पुकार है राफेई की। सच्ची पुकार है मानव कल्याण करनेवाली है। धूम्रपान बिल्कुल रोक लगाने लायक व्यसन है, गंदी आदत है। पर राफेई विश्व स्वास्थ्य संगठन के प्रवक्ता अधिकारी है जिनके चरित्र के दोहरेपन से इनकार नहीं किया जा सकता। इनके संगठन के वक्तव्यों में बिजनेस का दाँवपेंच होता है तम्बाकू के रोकथाम, धूम्रपान के निषेध में कमाई का पल्ला किधर से किधर करना इनका उद्देश्य है इस बात पर भी लोगों को ध्यान रखना चाहिए। ऐसे कुछ लिखित प्रमाणों के अनुसार तम्बाकू अब लगभग चार सौ वर्ष पहले अमरीका के किसी जंगल से आया था इसकी पहली खेती सूरत (गुजरात) में हुई। इसे सूरती नाम भी शायद इसीलिए मिला। रोग फैलाकर कमाई करने वाले जब नियंत्रण की बात करे तो उसकी बात किसी संत-महात्मा की तरह नहीं लिया जा सकता। राफेई की बात में कहीं न कहीं व्यवसाय होगा – यूँ तो यह उपदेश बिल्कुल कबूल करने लायक है। ■

व्यसनों से भरा संप्रेषण क्यों?

जहाँ तक गाँवों की बात है – जागृति आ जाए तो आज भी जीवन की सारी मान्यताओं के बीच नैसर्गिक सुख कदाचित् वहीं मिल सकता है।

■ भोगेन्द्र पाठक

हमारी ज्ञानेन्द्रियों की माँग हमारे मन-मस्तिष्क से भी संचालित होती है और हमारा मन-मस्तिष्क हमारी संस्कृति, हमारी धारणा और जो कुछ हम देखते-सुनते हैं – उनसे प्रभावित होते हैं। यही कारण है कि फिल्म, टी.वी., पत्र-पत्रिका, रेडियों की दुनिया हमारे मन-मस्तिष्क एवं क्रिया-कलापों को प्रभावित करती है।

हम टी.वी. देखते हैं – कैसे नहीं देखें? समाचार सुनना-देखना-जानना है; विभिन्न विषयों पर परिचर्चाएँ सुननी हैं, धारावाहिक भी देखते हैं – प्राइम टाईम को कैसे नकारें? संगीत सुनना है, फिल्में देखनी हैं, रेडियों सुनना है, पत्र-पत्रिकाएं पढ़नी हैं – अन्यथा हम बेखबर हो जाएँगे। लेकिन देखने-सुनने के बीच-बीच में जो बाजारू हरकतें उभर आती हैं – वे मुश्किल में डाल देती हैं। चैनल के चयन और फिर कार्यक्रम की उपादेयता। मनोरंजकता की खोज के बीच रीमोट कुछ ऐसे चैनलों से होता हुआ गुजरता है कि क्षण दो-क्षण भी परिवार के लोगों के साथ उन्हें देखना निर्लज्जता के सहारे के बिना संभव नहीं होता है। कोई अकेले भी देखे तो क्या मांसल अभिव्यक्तियाँ मस्तिष्क को अधोमुखी बनाने में संलग्न नहीं हो जाती हैं? यहाँ तक कि सामचारों के बीच में भी विज्ञापन आ धमकते हैं और विज्ञापनों उनके उद्देश्य के अनुसार खास-खास अंग-अंगों को उभारा जाता है, दिखाया जाता है। बस, मामला व्यापार का है। भला पान-मसाला खाने से किसी को क्या लाभ मिल सकता है – सिवाय उसके निर्माता के करोड़पति-अरबपति बनने के!

वैश्वीकरण का प्रभाव तस्वीरों पर भी पड़ा है। पता नहीं कहाँ-कहाँ से कैसी-कैसी तस्वीरें अखबार-पत्रिका वाले एकत्र कर लेते हैं। असर आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का है जहाँ सेक्स सबसे बड़ा आकर्षण है। सच पूछिए तो मनोरंजन के नाम पर आम दर्शक-पाठक के लिए मन-व्याकुलन बेचा जाता है। फलतः मानसिकता वैसी ही होती चली जा रही है। प्रसिद्ध यूनानी फिल्मकार एंजोलोपोलोस की बहुचर्चित फिल्म 'द बी कीपर' को ही लें। भारत के वितरकों ने इस फिल्म को इसलिए भी खरीदा क्योंकि इस फिल्म में नायिका कई दृश्यों में नंगी दिखाई देती है। नग्नता की बज्रबाहु तो टी.वी. के माध्यम से घर-घर तक पहुँच गई है जो अपने हाथों से रिसते कालिख से लज्जा और शील को पोतने में विशिष्टता रखती है।

गाँवों के देश भारत में टी.वी. पर शहर ही शहर दिखाई देता है। गाँव तो शहरों की तरह कहीं-कहीं दिखाई देता है। जबकि खासकर गाँवों को दिखाने, सँवारने और उत्तिष्ठ करने की जरूरत है। शहर से सुविधाओं को हटा दें तो शेष क्या रह जाता है! जहाँ तक गाँवों की बात है – जागृति आ जाए तो आज भी जीवन की सारी मान्यताओं के बीच नैसर्गिक सुख कदाचित वहीं मिल सकता है। अब तो गाँवों को दिखाना – वहाँ के जीवन को दिखाना, वहाँ जागरण के मंत्र फूँकना आसान हो गया है – डिजिटल कैमरे के कारण। कम्प्यूटर के कारण सम्पादन भी आसन और कम खर्चीला हो गया है। इस सुविधा का स्थापित फिल्मकारों ने भी प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया है। अमरीका के फिल्मकार टाडवैरो ने तो डेढ़ घंटे की अंतरराष्ट्रीय स्तर की फिल्म 'वंस एण्ड फ्यूचर क्वीन' मात्र एक हजार डॉलर में बनायी है।

गाँवों में बहुत कुछ है दिखाने के लिए प्रेरणा के लिए, जीवन-मूल्यों के संस्थापन

के लिए, मर्यादा और चैन के लिए। लोग ये देख रहे हैं कि आकर्षक बोतलों में भरा टोमैटो सॉउस कितना स्वादिष्ट होता है। मगर महीनों पुराने टमाटर की तरलता में छिपी गरलता का तो कहीं खुलासा किया ही नहीं जाता है। टोमैटो सॉउस की जगह शहर के लोगों को ताजा फल-सब्जियों के प्रयोग से बननेवाले स्वास्थ्य की जानकारी दी जाए – जिसका आस्वादन गाँव के लोग अपने खेतों, बगीचों से तोड़कर करते हैं। तब मानसिकता फास्ट फूड की तरफ से मुड़कर स्वच्छ गृह-निर्मित खाद्य की ओर मुड़ेगी। फास्ट फूड की संस्कृति स्वास्थ्य के लिए कहाँ से और कैसे हितकर हो सकती है? नए-नए अनुसंधानों से भी पता चला है कि भोजन का प्रभाव उसे बनाने वाले के उद्देश्य पर भी निर्भर करता है। माँ का बनाया हुआ भोजन सर्वाधिक स्वास्थ्यकर होता है। दिखावे और नकल की लहरों पर तैरती छिद्रदार नौका में स्थिरता और संतुलन की कामना व्यर्थ है। इसलिए यह दिखाने की जरूरत है कि कैसे कम आय में गाँवों के लोग सुख और मर्यादा का जीवन जी लेते हैं – जिसका फिल्मांकन अब सरल-साध्य है।

आधुनिकता फिल्मी दुनिया में, पश्चिमी दुनिया में प्राय: एकांगी अर्थ रखती है। रामायण के राम और महाभारत के कृष्ण शराब-सिगरेट नहीं पीते हैं तो उनके नायकत्व में कहाँ कमी हो जाती है। तथाकथित इस आधुनिक धारणा से हटकर भी अनेक फिल्में बनी हैं, धारावाहिक बने हैं, फिर भी लगता है कि अपसंस्कृति जीवनशैली का उपदेश दे रही है। कई धारावाहिकों में विवाहेत्तर संबंधों की कहानियों के संदर्भ में एक बार एक सज्जन ने चिंता एवं आपत्ति व्यक्त की तो एक एम.ए., पी.एच.डी. महिला ने कहा कि यह आपत्ति गँवई और पिछड़ी मानसिकता के कारण है। यानि उस शिक्षित सरकारी कर्मचारी महिला की धारणा में विवाहेत्तर संबंध रखना आधुनिकता/अग्रता है। ऐसी मानसिकता वैसी फिल्मों एवं धारावाहिकों को देखने के कारण ही बनती है जिनका उद्देश्य सिर्फ धन-अर्जित करना होता है – तब उनमें सस्ते मसाले भर दिए जाते हैं और भटकाव की राह खोल दी जाती है। लेकिन फिल्म बनाने का उद्देश्य जब नेक होता है तो फिल्म का संस्कार ही कुछ और हो जाता है। के० बिक्रम सिंह के एक चर्चित फिल्म की नायिका हैं इलाहाबाद के रसूलाबाद घाट की श्मशान भूमि पर ७५ वर्ष से दाह-संस्कार/दाहकर्म करानेवाली ८६ वर्षीया श्रीमती गुलाब तिवारी जिसे लोग महाराजिन बुआ के नाम से जानते हैं। जब वह दस वर्ष की थी तब ही उनके पिता का देहावसान हो गया था। पर १० वर्ष की इस अनाथ बच्ची ने भीख नहीं माँगी - जीवन को मरना नहीं सिखाया, बल्कि मृत व्यक्ति को भी संस्कार देने का रास्ता चुना – परंपरा को तोड़कर श्मशान भूमि में। अटूट साहस और सेवा के कारण आज महाराजिन बुआ की विशिष्ट पहचान बन गई है। इन पर बनी के विक्रम सिंह की फिल्म सार्थक प्रयास है। दर्शकों के मन-मस्तिष्क पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

अब जरा बात करें विज्ञापन की। किसी विज्ञापन को बार-बार दिखाए जाने के पीछे यही उद्देश्य है न कि उसे ज्यादा से ज्यादा लोग देखें और बार-बार देखें ताकि वही वस्तु उनकी आँखों पर छायी रहे और उसके मोहपाश में बँधकर दर्शक-श्रोता उसके उपभोक्ता भी बन जाएँ। और इसमें संदेह भी नहीं कि इसमें विज्ञापनदाताओं को सफलता भी मिलती है। लेकिन धारावाहिक, फिल्म या एलबम में नग्नता प्रदर्शित करने का क्या कारण हो सकता है। क्या यह कि ऐसे दृश्य रहने पर दर्शकों की संख्या बढ़ जाती है या दर्शक यही देखना चाहते हैं अन्यथा उनके निर्माता का हित नहीं हो पाएगा? आज भी आँकड़े बताते हैं कि शालीन फिल्मांकन ज्यादा हिट करती हैं।

सफलता के शीर्ष पर रहनेवाली फिल्मों या धारावाहिकों के पात्र अपेक्षाकृत अधिक शालीन दिखते हैं अन्यथा वयस्क (एडल्ट) फिल्में ही निर्माता को खूब मुनाफा कमाने में सफल बनाया करतीं। टी.वी. पर कुछ ऐसे एलबम भी दिखाई देते हैं जिनकी गायिका ही नायिका है और उन एलबमों के निर्माण की नीयत और नियति में उनकी प्रमुख भूमिका रही है। फिर भी, नायिका बनी गायिका अंग-प्रदर्शन या नग्नता से स्वयं को रोकती नज़र नहीं आतीं हैं। ऐसे धारावाहिक भी है जिनकी निर्देशक उनमें प्रमुख भूमिका निभा रही हैं। फिर भी वे अपने वस्त्रों में कंजूसी करने में हमेशा सचेष्ट रहती हैं। परिणाम होता है – उनकी यह मानसिकता स्क्रीन पर बार-बार आती है और सनातनी शास्त्रीय सभ्यता के भी कुछ लोग उनका अनुकरण करना आधुनिकता मान लेते हैं। आधुनिकता की धारणा भी लोगों की मानसिकता से प्रभावित होकर रूप-ग्रहण करती है। होटलों में जाकर फ्रीज में बासी सारी चीजों को खाना आधुनिकता है और गाँवों में खेतों से खीरा-ककड़ी तोड़कर, मूली उखाड़कर खाना पिछड़ापन, सिर पर आँचल रखनेवाली, घर के कर्ता-धर्ता एवं बच्चों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करनेवाली महिला की शालीनता, उसका त्याग पिछड़ापन माना जाता है और जींस-गंजी पहनकर घूमनेवाली बच्चों को अपना दूध न पिलाने वाली....दिनभर घर छोड़कर भटकनेवाली महिला आधुनिक मानी जाती है। सारे भटकाव के पीछे जीवन की धारणा का भटकाव ही है। धन के अभाव में जीवन जीना संकटपूर्ण होता है – साथ ही केवल धन भी व्यक्ति को सुखी नहीं कर सकता। आत्महत्याएँ ज्यादातर धनपति ही करते हैं। पारिवारिक संबंधों में दरारें तथाकथित विकसित देशों में अधिक आई हैं, मानसिक यातनाएँ भी प्राय: उन्हीं लोगों के खाते में चली जाती हैं। भारत में पारिवारिक-सामाजिक सुख की लौ जलायी गई है, जबकि पश्चिम में प्राय: वैयक्तिक सुख की दिशा में जीवन को बढ़ा दिया जाता है। निष्कर्षत: तमाम माध्यम (media) एक संतुष्ट एवं शालीन जीवन की स्थापना के उद्देश्य पर ध्यान रखें तो दर्शकों की नीयत और मन को तबाह नहीं होना पड़ेगा। ■

Scanned with OKEN Scanner

लेख

स्वदेशी उत्पादन स्पर्धी बनें......

■ आलोक पौराणिक

स्वदेशी उत्पादों की बिक्री बढ़ाने के लिए काम कर रहे कार्यकर्ताओं से बात करो, तो साफ होता है कि आम जनता में अपने देश में बनी चीजों को खरीदने की भावना तो है, फिर भी विदेशी वस्तु खरीदने की लालसा लोगों में बनी हुई है। शायद बहुराष्ट्रीय कंपनियों की वस्तुओं में गुणवत्ता दिखायी दे रही हो तो निश्चय ही वे स्वदेशी वस्तुओं की ओर रुख नहीं करेंगे। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बिक्री के आंकड़े दिन-प्रति दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। इधर देखा जाए तो उपभोक्ता अपने रुपए की पूरी कीमत चाहता है। स्वदेशी बंधुओं को रोजगार प्रदान करने के लिए स्वदेशी वस्तु खरीदने की सदाश्यता उसमें नहीं है। अगर यह सदाश्यता होती और स्वदेशी का भाव जगाना आसान होता; भारत में चीन के वे रेल धुँआधार तरीके से नहीं बिक रहे होते, जो दस रुपए के चार मिल रहे हैं। उपभोक्ता की प्रवृत्ति इधर किसी भी कीमत पर सस्ता और बेहतर लेने की है। स्वदेशी से जुड़े उदार और उदात्त भावों को उपभोक्ताओं को समझाना आसान नहीं है। अब आम लोगों में स्वदेशी उत्पाद खरीदने के लिए अगर अधिक भावना जाग्रत करनी है तो जनता को विदेशी वस्तुओं से मोह को हटाना और अपने देश के सामान के प्रति लगाव होना चाहिए जिससे स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा मिलें। आम लोगों को याद दिलाना होगा कि जिन विदेशी वस्तुओं को हम खरीदने में दिलचस्पी ले रहे हैं उन विदेशी वस्तुओं का हमारे पास तक पहुँचना इतना आसान काम नहीं था उनमें ज्यादातर वहाँ की जनता का भी सहयोग था जिन्होंने अपने उत्पाद यहाँ भेजकर हमारे स्वदेशी उत्पादकों में खलबची मचा दी है। आज बजाज ऑटो कंपनी लंबे अरसे से इस आशय की बात कहती आ रही है कि बजाज स्वदेशी कंपनी है, बजाज बुलंद भारत की तस्वीर है। पर इधर उपभोक्ताओं ने यह बात सुनने से इनकार कर दिया है और हीरो होंडा और अन्य दोपहिया वाहनों के प्रति जबरदस्त रुझान दिखाया है। अन्य शब्दों में उपभोक्ताओं के लिए खरीदने का यह

> **तमाम कंपनियों को यह बात समझ में आ जानी चाहिए कि उपभोक्ताओं को बेहतर क्वालिटी और बेहतर मार्केटिंग से ही आकर्षित किया जा सकता है।**

कोई आधार नहीं है कि कौन सी वस्तु स्वदेशी है और कौन-सी विदेशी या बहुराष्ट्रीय कंपनियों की।.उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण आधार यह है कि कौन सी वस्तु सबसे ज्यादा उपयोगिता दे रही है। कितनी शर्म की बात है कि उपयोगिता के नाम पर अपने देश का पैसा दूसरे देशों को जाता है।

तमाम कंपनियों को यह बात समझ में आ जानी चाहिए कि उपभोक्ताओं को बेहतर क्वालिटी और बेहतर मार्केटिंग से ही आकर्षित किया जा सकता है। इसी समझ में यह सबक भी निहित है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खिलाफ नकारात्मक स्वदेशी हल्ला निरर्थक है, उनके खिलाफ सबसे सशक्त औजार वे सकारात्मक परिणाम है, जो तमाम स्वदेशी कंपनियाँ पेश करती हैं।

भारत में काम कर रही बहुराष्ट्रीय कंपनी में शीर्ष कंपनी हिंदुस्तान लीवर कंपनी को वाशिंग पाउडर में जिस तरह की चुनौती निरमा से मिली थी, वैसी ही कहानी आइसक्रीम बाजार में अमूल आइसक्रीम दोहराने जा रही है। अमूल ब्रांडों की मालिक सहकारी संस्था-गुजरात कोआपरेटिव मिल्क मार्केटिंग फेडरेशन ने आइसक्रीम बाजार में चार साल पहले ही कदम रखे हैं। मार्च 2001 में खत्म हुए साल में फेडरेशन ने 1.6 करोड़ लीटर आइसक्रीक बेची। 2000-2001 में फेडरेशन की आइसक्रीम बाजार में पचास फीसदी की बढ़ोत्तरी हुई है। यह तथ्य तब और भी जोरदार लगता है कि ज[...] यह साफ होता है कि हिंदुस्तान लीवर कंप[...] का आइसक्रीम कारोबार कई सालों से एक ही स्तर पर टिका हुआ है। इसके अलावा अमूल ब्रांड की आइसक्रीम ने अपने लिए बाजार पै[...] किया है। हिंदुस्तान लीवर की आइसक्रीम बाजा[...] में उपस्थिति उन तमाम आइसक्रीम ब्रांडों के जरिए संभव हुई है, जिन्हें हिंदुस्तान लीवर [...] टेकओवर किया था।

अमूल ब्रांडों की बिक्री का आधा[...] उनकी गुणवत्ता है, उनका मार्केटिंग नेटवर्क है इंटरनेट मार्केटिंग का बहुत जोरदार तरीके [...] प्रयोग जिन संस्थाओं ने किया है, उनमें गुजरा[...] फेडरेशन अग्रणी है। गुजरात फेडरेशन ने य[...] साबित किया है कि मार्केटिंग रणनीतियों के जरिए स्वदेशी ब्रांडों को भी उसी तरह [...] स्थापित किया जा सकता है, जिस तरह [...] तमाम बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने ब्रांड स्थापित हैं मजबूत तरीके से मार्केटिंग नेटवर्क स्थापि[...] करने की कला सिर्फ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पास ही नहीं है यह बात गुजरात फेडरेशन [...] जोरदार साबित की है। स्वदेशी चिंतन कर[...] वालों का अब यह दायित्व बनता है कि [...] अमल की सफलता की गाथा और उसके सबक पूरे देश में पहुँचाएँ। सिर्फ रुदन औ[...] क्रंदन करने से काम नहीं चलेगा। स्वदेशी चिंतन करने वाले कार्यकर्ताओं में आमतौर प[...] हिंदुस्तान लीवर कंपनी को उन तमा[...] चुनौतियों के प्रतीक के तौर पर चिन्हित किय[...] जाता है जो स्वदेशी अर्थव्यवस्था के लि[...] खतरा हैं। हिंदुस्तान लीवर को देश से खदेड़[...] की बात करने वाले कार्यकर्ताओं की भी कमी नहीं है। जिस तरह से देश की अर्थव्यवस्था का ग्लोबीकरण हो रहा है उसे देखते हुए यह बात व्यावहारिक नहीं लगती कि हिंदुस्तान लीवर जैसी कंपनियों को देश से बाहर खदेड़ा जा सकता है। इसलिए व्यावहारिक रास्ता यही है कि स्वदेशी भावना के साथ-साथ उन्हें क्वालिटी और मार्केटिंग के क्षेत्र में भी चुनौती दी जाए। ■

Scanned with OKEN Scanner

अमरीकियों की फेंकी मुर्गे की टांगें चबाएँगे....हम

अमरीकी कंपनियों ने चिकन लेग की कीमत 26 रुपए प्रतिकिलो निर्धारित की है, सौ प्रतिशत आयात शुल्क लगने के बाद भारत में वह 52 रुपए प्रतिकिलो के हिसाब से आएगा।

अमरीकियों की जूठन 'चिकन लेग' अब पाँच सितारा होटलों में भारतीय चटखारे लेकर खाएंगे। यह चिकन लेग (मुर्गे की टांग) अब आम घरों में भी सस्ते दामों पर मुहैया कराया जाएगा। एक्ज़िम नीति में खुले व्यापार की छूट मिलने के एक माह बाद अब अमरीकी कंपनियों ने भारतीय चिकन बाजार पर कब्जा जमाने की रणनीति पर काम करना शुरू कर दिया है। उन्होंने अब देश की बड़ी पाल्ट्री फर्मों जैसे सगुना पाल्ट्री फार्म, पायनियर पाल्ट्री फार्म, शांति फर्म, सिन्थेटिक एजेंसी, वालार मैत्री एजेंसी, सिवा शक्ति एजेंसी व स्वामी एजेंसी के साथ गठजोड़ की प्रक्रिया आरंभ कर दी है।

अमरीकी कंपनियों ने चिकन लेग की कीमत 26 रुपए प्रतिकिलो निर्धारित की है, सौ प्रतिशत आयात शुल्क लगने के बाद भारत में वह 52 रुपए प्रतिकिलो के हिसाब से आएगा।

इस संदर्भ में एक दिलचस्प बात यह है कि अमरीकी व यूरोपीय देशों के लोग चिकन का ऊपरी हिस्सा यानी चेस्ट ही खाते हैं और चिकन लेग को फेंक देते हैं। उनका मानना है कि चिकन लेग में कॉलेस्ट्राल या चिकनाई होती है, जो स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। इसके अलावा वहाँ पर चिकन लेग खाने का प्रचलन भी ज्यादा नहीं है। जबकि भारत में एकदम उल्टी धारणा है। यहाँ के लोग चिकन लेग को ज्यादा पसंद करते हैं और इसमें कॉलेस्ट्रोल की धारणा को निर्मूल माना जाता है।

प्राप्त आंकड़े के अनुसार अमरीका में प्रति व्यक्ति चिकन की खपत 45 किलोग्राम है। इतनी अधिक खपत होने के कारण और मात्र चिकन का ऊपरी भाग खाए जाने से अमरीका में हर तीसरे माह 10 करोड़ से 12 करोड़ टन चिकन लेग फेंकना पड़ जाता है, क्योंकि इससे ज्यादा समय भंडारण में रखना हानिकारक माना जाता है और उपभोक्ताओं को इससे कई तरह की बीमारियाँ हो सकती हैं।

अमरीका व यूरोपीय देशों में मुर्गे के ऊपरी भाग की कीमत करीब 160 रुपए प्रतिकिलो है जबकि चिकन लेग की कीमत मात्र 14 रुपए। इस पर यह तुर्रा है कि वहाँ चिकन लेग खाने वालों की संख्या न के बराबर है। इसी बात का फायदा उठाते हुए अमरीका ने एक ऐसी चाल खेली कि जो माल उसका कूड़े में जा रहा था, उसे भारत जैसा एक विशाल बाजार गया। अभी हाल ही घोषित एक्ज़िम नीति में बोन लैस मीट व चिकन लेग के आयात को खुली छूट दे दी गयी। यानी अब अमरीकी कंपनी चाहे तो जितनी मात्रा में उन फेंके हुए चिकन लेग को भारतीय को खिला सकती है।

अमरीकी कंपनियों ने ताजा व पुराने माल के बीच की खाई को मिटाने के लिए अब सबसे ज्यादा पैकिंग पर ध्यान देना शुरू कर दिया है। बाजार में खूबसूरत पैकिंग के साथ भेजा जाएगा, ताकि भारत के उच्च मध्यवर्ग को लुभाया जा सकता है। वैसे अमरीकी कंपनियों का पहला लक्ष्य भारत के उच्च मध्यवर्गीय लोग ही है। वे लोग खूबसूरत पैकिंग देखकर ही माल खरीदते हैं और इनकी जेब से पैसा निकालना इतना मुश्किल भी नहीं है।

मौजूदा समय में भारत में एक चिकन की कीमत औसतन 60 से 80 रुपए के बीच बैठती है और अगर आप मात्र चिकन लेग ही लेना चाहे तो इसकी कीमत 80 से 100 रुपए के बीच होती है। यानी चिकन लेग की कीमत चिकन के साथ ज्यादा होती है। यहाँ पर हैरानी की बात तो यह है कि चिकन के मामले में भारत का निर्यात शून्य है और भारत में जितना उत्पादन किया जाता है, वह घरेलू बाजार की माँग के मद्देनजर पर्याप्त है। फिर भला इसके खुले आयात की छूट क्यों?

उत्पादन की दृष्टि देश के सबसे बड़े पाल्ट्री फर्म सुगना के चेयरमैन बी सुंदरराजन के पास भी इस प्रश्न का जवाब नहीं है। श्री सुंदरराजन को सर्वोत्तम उत्पादक का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुका है।

श्री राजन ने स्वीकार किया है कि अमरीकी व यूरोपीय कंपनियों ने कई भारतीय कंपनियों के साथ समझौता करना शुरू कर दिया है। क्या आपके पास भी इस तरह के आफर आए? पर उन्होंने कहा कि आए थे, मगर मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। हमारी कंपनी उत्पादन के मामले में देश की नम्बर एक कंपनी है। फिर भला हमें किसी का सहारा लेने की क्या जरूरत। उन्होंने बताया कि पोल्ट्री के क्षेत्र में देश में प्रति सप्ताह 25 लाख चिकन का उत्पादन किया जाता है। इसका कारोबार अब एक हजार करोड़ रुपए से ऊपर पहुँच चुका है। देश में करीब छह हजार पाल्ट्री फर्म हैं और प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से तीन लाख से भी ज्यादा लोग इससे जुड़े हुए हैं। ■

Scanned with OKEN Scanner

भूमंडलीकरण एवं भारतीय उद्योग

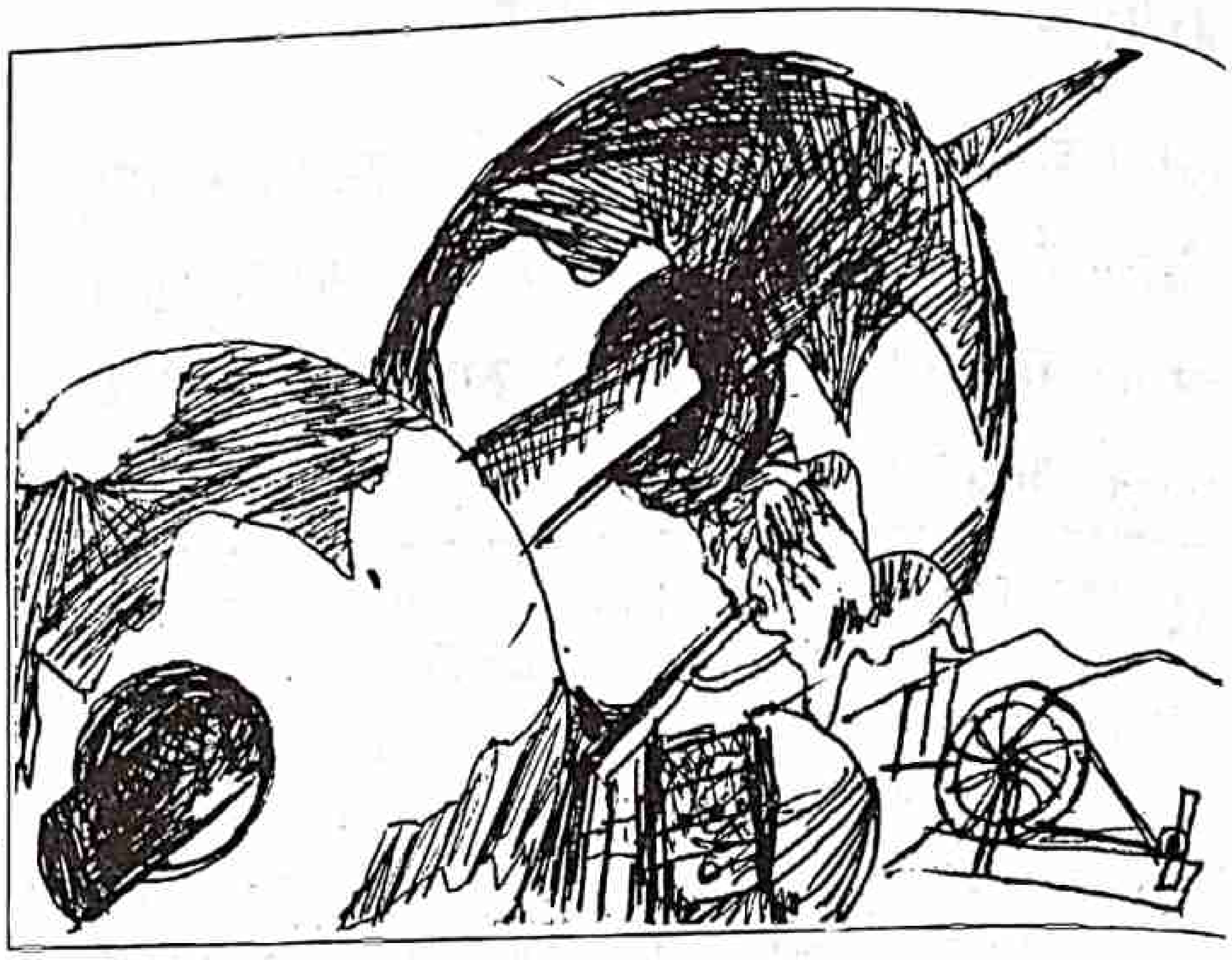

भूमंडलीकरण की व्याख्या विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न रूपों में की गई है। परन्तु मैं इसकी समीक्षा सतही वास्तविकताओं के आधार पर अर्थात् सूक्ष्म अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से, करना चाहूँगा न कि वृहद् अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से, क्योंकि ऐसी व्याख्या करना अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञों का काम है जो मोहक स्थलों पर आयोजित होने वाले अंतरराष्ट्रीय सेमिनारों में ऐसा किया करते हैं।

ऐसा कहा जा रहा है कि वर्तमान में भारतीय उद्योग संदिग्ध सुधार या उत्थान की धीमी-धीमी साँसे ले रहा है। इस संदर्भ में लोग भारतीय शेयर बाजार में आए तीक्ष्ण चढ़ाव (सुधार) की बातें करते हैं। ऐसा अनुमान किया गया है कि भारत में पूँजी निवेश में काफी वृद्धि हुई है और अगर कुछ लोगों की बातें मान ली जाएँ तो यह वृद्धि ५०००० करोड़ रुपयों से भी अधिक की है। हम बड़ी आसानी से यह भूल जाते हैं कि भारत में शेयर बाजार से सरोकार रखने वाले लोगों की संख्या नगण्य है और उनमें अधिकांश शायद दलाल स्ट्रीट के पचास मील की परिधि में रहते है। बहरहाल पूँजी निवेश में यह वृद्धि विदेशी उपभोक्ता कंपनियों एवं सूचना तकनीक क्षेत्र में कुछ कंपनियों द्वारा की गई है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि आज जो भी कंपनियाँ अच्छी स्थिति में है उनके तीस प्रतिशत शेयरों के मालिक विदेशी निवेशक हैं जो भारी मुनाफा कमाकर उसे हमारे देश से बाहर भेज देते हैं। इस मुद्दे पर आपका ज्यादा समय न लेते हुए मैं आपका ध्यान हाल ही में 'इकोनोमिक टाईम्स' में प्रकाशित उस समाचार की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा, जिसमें कहा गया है कि विक्रय में वृद्धि के बावजूद ए०सी०ए० (एसोसियट सिमेंट कं०) का शुद्ध लाभ १७ प्रतिशत घटा, इसके साथ ही यह भी छपा था – नेस्ले के शुद्ध लाभ में ४६ प्रतिशत की वृद्धि। कुछ दिनों पहले हमारे देश के बीड़ी बादशाह यानी आई०टी०सी० के अध्यक्ष महोदय ने आत्मश्लाघा करते हुए कहा था कि देश के पूँजी बाजार में उनकी कंपनी की स्थिति सर्वोत्तम है एवं विगत चार वर्षों में उनकी कंपनी के कुल व्यवसाय में चौगुने से भी ज्यादा (अर्थात् ५५७० करोड़ रुपयों से बढ़कर २४००० करोड़ रुपए) की वृद्धि हुई है और कुल मुनाफा १००० करोड़ रुपयों से भी ज्यादा है। ऐसा लगता है जैसे हम बड़े आकर्षक मूल्यों पर घातक बिमारियाँ खरीदने में लगे हुए हैं।

संयुक्त उद्यम-अधिग्रहण से पहले का कदम

एक बार आप पूँजी बाजार (या शेयर बाजार) की दुनिया से बाहर आकर देखें तो आप पाएँगे कि निगमित क्षेत्र में कुछ अति खतरनाक एवं चौंका देने वाले प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव हो रहा है। उदारीकरण का अर्थ है भारतीय निगमों को उद्योग एवं व्यापार के लिए उन्मुक्त वातावरण उपलब्ध कराना न कि भारतीय पूँजी बाजार में विदेशी परभक्षियों को शिकार के लिए खुला छोड़ देना। उदारीकरण के पूर्व सभी व्यावसायिक घराने शोर मचाते थे कि व्यवस्था के लिए देश में उपयुक्त वातावरण नहीं है और शायद सही भी थे। लेकिन जब उन्मुक्त वातावरण प्रदा किया गया तब शायद ही कोई ऐसा औद्योगि घराना था जो सिर्फ अपने बूते पर तेजी विस्तार की ओर बढ़ा। अगर हम एक्से जैसे कुछेक अपवादों को छोड़ दें तो शाय ही कोई ऐसी कंपनी नजर आती है जिस संयुक्त उद्यम के नाम पर विदेशी कंपनिय के सामने घुटने नहीं टेके। ऐसा करना सिर्फ इन कंपनियों के लिए बल्कि पूरे दे के लिए अमंगलकारी है। अब ये सारे संयुक उद्यम विघटित हो रहे हैं और हम अने निगमों की मृत्यु का दयनीय दृश्य देख र हैं। गोदरेज, टाटा, महिन्द्रा, वोल्टास जैसं कंपनियाँ बलिवेदी पर अपना सर रख चुकं हैं। अभी हाल ही में ब्रिटेन की बिजल कंपनी पावर जेन ने अहमदाबाद विद्युत कंपनी के टौरेन्ट कंपनी के शेयरों को खरीद लिया है। देश के दूसरे भागों में भी ऐसा ही कुछ करने की उनकी मनोवृत्ति है। महिन्द्रा ने ओटिस कंपनी के अपने शेयरों का विक्रय एक अमरीकी कंपनी को कर दिया है। वोल्टास भी इलेक्ट्रोलक्स कंपनी के शेयरों के साथ ही कर रहा है और टाटा ने भी टाटा आईबीएम के अपने शेयरों की बिक्री के लिए आईबीएम को प्रस्ताव दिया है।

इन सौदेबाजियों से दो अत्यावश्यक मुद्दे

Scanned with OKEN Scanner

सामने उभरते हैं –

(१) भारतीय औद्योगिक घराने क्यों अपनी हिस्सेदारी संयुक्त क्षेत्र को दे दें एवं (२) पूर्ण रूपेण (पूर्व से) श्रेष्ठ होते हुए भी क्यों उनके सामने आत्मसमर्पण करें? इसके परिणाम बहुत दूरगामी होंगे। इनका उत्तर ढूँढ़ने के लिए भी बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा। तब ये विदेशी कंपनियाँ अपने भारतीय साझेदारों को बाहर कर देंगी और भारतीय बाजार में स्वच्छंद विचरण करेंगी। विदेशी खरीददारों को जिस कीमत पर ये हिस्सेदारियाँ हस्तांतरित की जा रही हैं वह उनके लिए लाभप्रद है। इस प्रकार के विक्रय के लिए जो फार्मूले उपयोग में लाए जा रहे हैं उनमें इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है कि हम इन कंपनियों के नए स्वामियों को कितना बड़ा एवं निर्बाद्ध बाजार उपलब्ध करा रहे है। जैसा कि मैं इस वक्तव्य में पहले कह चुका हूँ कि ऐसे देश में जहाँ चार वर्षों में पूँजी में वृद्धि की दर चौगुने से भी ज्यादा है (आई.टी.सी. का उदाहरण) हम क्यों विदेशियों को शेयर किसी भी दामों पर बेंचे? याद रहे कि हम सिर्फ भारतीय हिस्सेदारी नहीं बेच रहे हैं वरन् साथ ही साथ उन्हें एक ऐसा भारतीय बाजार भी प्रदान कर रहे हैं जो विश्व स्तर पर उनको अनुपम उपहार है।

जिस प्रकार भारतीय व्यवसायिक घराने इस नव प्रदत्त स्वतंत्रता का उपयोग अपनी हिस्सेदारी विदेशियों को बेचने एवं अपना नेतृत्व उनको प्रदान करने में लगे हुए हैं उसे देखकर बड़ी निराशा होती है। इनमें सबसे निराशाजनक या लज्जास्पद आप जो भी कह लें, रहा – लक्मे का लीवर के साथ विलय। अपनी हिस्सेदारी बेचकर वे अब खुदरा बिक्री की सुखद दुनिया में चैन की बंशी बजा रहे हैं। दुर्भाग्य से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सरकार ने भी गलत ढंग से स्टंप किए जाने पर 'आउट नहीं' कहने का तीसरे अंपायर का दायित्व निभाने के बदले मूक या निर्लिप्त तमाशाई बने रहने का निर्णय कर रखा है।

सौभाग्य से कुछ उद्योगपतियों की नींद खुली है और उन्होंने इस बेतुकेपन के विरुद्ध आवाज बुलंद करना प्रारंभ कर दिया है। आईटीसी के अध्यक्ष ने हाल ही में घोषणा की है कि वे सूचना तकनीकी विभाग शुरू करने जा रहे हैं। 'देर आए दुरूस्त आए' – चलिए कुछ लोग ही सही पर वे इस खतरे से वाकिफ तो हुए। धीरे-धीरे ही सही पर अब भारतीय व्यवसायियों को आभास होने लगा है कि मूलभूत योग्यता मूलभूत होने में नहीं, बल्कि योग्य होने में है और अगर आर्थिक अवसर एवं राष्ट्रीय आवश्यकता हो तो ऐसी योग्यता प्राप्त की जा सकती है।

लोक उपक्रम आज राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाह से राजनीति बनें लोगों के प्रिय शिकार बन गए हैं, वे चुपचाप उनके कोड़े खाते रहते हैं। सन् १९९१ से लेकर आज तक जो भी सरकारें आयी एवं गयी उन्होंने सार्वजनिक उपक्रमों की समस्याओं को सुलझाने की बड़ी-बड़ी घोषाणाएँ की। २२ जून, १९९८ को वर्त्तमान वित्तमंत्री ने घोषणा की – ''सार्वजनिक क्षेत्र की मालिक आम जनता है। हम लोग इनके शेयर आम जनता को बेंच देंगे और आम जनता की संपत्ति आम जनता को लौटा देंगे।''

लोक उद्यम : हम इनमें नागरिकों की भागीदारी क्यों नहीं बढ़ा सकते हैं?

अब हम अपना ध्यान लोक उपक्रमों की ओर मोड़ते हैं। लोक उपक्रम आज राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाह से राजनीति बनें लोगों के प्रिय शिकार बन गए हैं, वे चुपचाप उनके कोड़े खाते रहते हैं। सन् १९९१ से लेकर आज तक जो भी सरकारें आयी एवं गयी उन्होंने सार्वजनिक उपक्रमों की समस्याओं को सुलझाने की बड़ी-बड़ी घोषाणाएँ की। २२ जून, १९९८ को वर्त्तमान वित्तमंत्री ने घोषणा की – ''सार्वजनिक क्षेत्र की मालिक आम जनता है। हम लोग इनके शेयर आम जनता को बेंच देंगे और आम जनता की संपत्ति आम जनता को लौटा देंगे।'' मुझे बड़े अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि मैं अपने शेयर के लिए अभी भी इंतजार कर रहा हूँ। ऐसा लगता है कि सरकार ने 'गोद लेनेवाले मार्ग' का अनुसरण करने का निश्चय किया है और ऐसा करने के लिए वह एक सार्वजनिक उद्योग का शेयर दूसरे सार्वजनिक उद्योग को हस्तांतरित करने में लगी हुई है। यह तो ऐसा ही है जैसे एक अक्षम माता-पिता द्वारा पालित संतान को लेकर एक अनुत्तरदायी माता-पिता को सौंप दिया जाए। यह पद्धति सब तरह के आर्थिक एवं प्रबंधकीय तर्कों या युक्तियों से परे हैं। ऐसा करने से बोर्ड रूम में बैठने की व्यवस्था एवं बोर्ड के कागजातों के कुछेक आँकड़ों में परिवर्तन के सिवा और कोई परिवर्तन नहीं होने वाला है। बोर्ड रूम में 'म्युजिकल चेयर्स' का खेल खेलने से कार्यक्षमता में सुधार संभव नहीं है।

इस क्षेत्र में वास्तविक सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि हम इस प्रयत्न में आम जनता को कहाँ तक शामिल करते हैं, जैसा कि अन्य देशों में किया गया है। यह बात समझ में नहीं आती है कि सरकार लोक उपक्रमों के शेयर आम जनता को क्यों नहीं उपलब्ध कराती है जबकि अनेक यूरोपीय देशों में ऐसा किया गया है, ऐसा करने से हिस्सेदारों की आधारभूत वृद्धि होगी एवं पूँजी बाजार का सही रूप में पुनर्जीवित किया जा सकेगा। इस दिशा में सरकार द्वारा प्रकट की जा रही अनिच्छा क्षम्य नहीं है। ऐसी ही परिस्थितियों में ब्रिटेन के कुछ लोक उपक्रमों के शेयर आम जनता को उपलब्ध कराए गए थे। उन शेयरों को खरीदने के लिए नौ गुणा आवेदन लिए गए थे जिसके फलस्वरूप लाखों लोग विशेषकर समाज के निम्न वर्गों के लोग लाभान्वित हुए।

अब हम अपना ध्यान लघु उद्योगों की ओर मोड़ते हैं। हमारे देश के लघु उद्योग क्षेत्र न सिर्फ देश का सबसे बड़ा नियोक्ता है, वरन् आश्चर्यजनक रूप से देश के कुल निर्यात में सबसे बड़ी भागीदारी इसी क्षेत्र की है। विगत अनेक वर्षों से यह क्षेत्र सरकार एवं विपक्ष के बीच फुटबाल का खेल बना हुआ है। यह सही है कि यह क्षेत्र बड़े औद्योगिक क्षेत्रों की तरह कार्यकुशल या सक्षम नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है हम बहुराष्ट्रीय कंपनियों को इन क्षेत्रों में मुँह मारने की इजाजत दे दें। जिससे वे हमारे यहाँ बेरोजगारी एवं सामाजिक अव्यवस्था

Scanned with OKEN Scanner

पैदा कर दें। सच पूछिए तो कुछ वस्तुएँ जो आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बनाई जा रही है वे ही वस्तुएँ लघु उद्योगों के द्वारा कम लागत पर बनाई जा सकती हैं जिससे ये उपभोक्ताओं को भी कम मूल्य पर उपलब्ध हो सकेंगी। ऐसी भी सूचनाएँ हैं कि एक बहुत बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनी अपने उत्पादन का ४० प्रतिशत लघु उद्योगों से प्राप्त करती है एवं उसे ऊँचे दामों पर बेचकर अत्यधिक मुनाफा कमा रही है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है अगर हम यह अहसास कर लें कि जापान इन्हीं लघु उद्योगों के बल पर जिनके उत्पाद कम कीमत पर विश्वस्तरीय गुणवत्ता के साथ उपलब्ध हैं – औद्योगिक महाशक्ति के रूप में उभरकर सामने आया है।

तकनीक हस्तांतरण का दावा एवं आवश्यकताओं का मूल्यांकन

भूमंडलीकरण का यह उपदेश जिसे एक तकनीकी समताकारक, एक आर्थिक स्वर्ग की संज्ञा दी जा रही है सर्वशक्तिमान डॉलर के सामने सब समान है। लेकिन सत्य क्या है? आस्था (विश्वास) ही मूलमंत्र है। आस्था एवं सुविश्वास के आधार पर ही सरकार ने कंपनियों को अपने सकल उत्पाद का ५ प्रतिशत तकनीकी हस्तांतरण शुल्क के रूप में भुगतान करने की सहज अनुमति प्रदान कर दी। ये पूछा जा सकता है कि इतनी धमाकेदार शुरूआत किसने की? यह हिन्दुस्तान लीवर को छोड़कर दूसरा कोई नहीं था। इस वर्ष उन्होंने इस देश के प्रति बड़ी सदाशयता का परिचय देते हुए अपने सकल उत्पाद का मात्र १ प्रतिशत यानि करीब ७० करोड़ रुपए तकनीकी हस्तांतरण शुल्क के रूप में अपने मूल कंपनी को भुगतान किया। यह एक ऐसी प्रथा है जिससे दहेज की बू आती है। मानना पड़ेगा कि वे बड़े उदार थे और ३५० करोड़ रुपयों का भुगतान बिना सरकारी पूर्वानुमति के कर सकते थे, पर उन्होंने मात्र ७० करोड़ रुपयों का ही भुगतान किया। लेकिन हर बड़े पाप की शुरूआत छोटे पाप से ही होती है। इस देश के निरीह नागरिक के रूप में ही सही पर हमें यह पूछने का अधिकार तो है ही कि ७० करोड़ रुपयों के एवज में भारत को

सिंगापुर एयरलाइंस का गठन एयर इंडिया छोड़ चुके कुछ भारतीयों द्वारा ही किया गया है। यह विरोधाभास और भी मुखर हो जाता है अगर हम देखें कि किस तरह एक अदने से उद्यमी ने जेट एयरलाइंस की स्थापना करके टाटा समूह सहित पूरे देश के समक्ष यह उदाहरण प्रस्तुत किया कि बिना विदेशी कंपनियों के सहयोग के भी व्यवसाय किया जा सकता है और सफल भी हुआ जा सकता है।

यूनीलीवर द्वारा ऐसी कौन-सी तकनीक हस्तांरित की गई जिसका विकास हिन्दुस्तान लीवर अनुसंधान केंद्र या देश की अन्य राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्रों में नहीं किया जा सकता था। अभी हाल ही में हिन्दुस्तान लीवर के अध्यक्ष महोदय ने बड़े गर्व से दावा किया था कि हिन्दुस्तान लीवर का अनुसंधान केंद्र देश में व्यवसायिक घरानों के द्वारा चलाए जाने वाले अनुसंधान केंद्रों में सर्वोत्तम है। हम यह भी दावा करते हैं हमारे पास विश्व में सर्वाधिक मात्रा में तकनीकी जनशक्ति उपलब्ध है। हम अंतरीक्ष में उपग्रह भेज सकते हैं, संयुक्त राष्ट्र अमरीका को सॉफ्टवेयर विकसित करके दे सकते हैं, परंतु बिना विदेशी तकनीकी सहायता के साबुन या चटनी नहीं बना सकते हैं। अतः हम इनके लिए डॉलर में भुगतान करते हैं। ये तथ्य मुझे बहुत आहत करते हैं, मर्मान्तिक एवं तकनीशियनों के लिए बहुत अपमानजनक तो है ही साथ ही ये उनके समक्ष एक चुनौती भी प्रस्तुत करती हैं। इन चुनौतियों का उचित जवाब हमें देना होगा। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस संबंध में स्वदेशी आंदोलन ने वित्तमंत्री को एक ज्ञापन भी दिया है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये नवनिर्मित कंपनियाँ जिनका १०० प्रतिशत नियंत्रण विदेशी हाथों में है, यहाँ मुनाफा कमाकर उसे यहाँ पूर्ण निवेश करने के बजाए उसे बाहर भेजने में लगी हुई है। किसी भी देश के औद्योगिक प्रगति का अनुमान उद्योग में किए गए मूल निवेश से नहीं वरन् इस बात से लगाया जाता है कि उनमें किए गए मूल निवेश से अर्जित मुनाफे के कितने बड़े भाग का पुनर्निवेश किया जाता है। ये १०० प्रतिशत नवनिर्मित कंपनियाँ अन्य विदेशी कंपनियों की तरह ही अपना वृहत् लाभांश यहाँ पुनर्निविष्ट करने के बजाय वैधानिक तरीकों से हजम करने में लग जाएंगी।

इसके साथ-साथ ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में बड़ी बेशर्मी से गुप्त रूप में १०० प्रतिशत विदेशी कंपनियों का गठन करने में प्रयासरत हैं। दुर्भाग्यवश सरकार को भी इस वास्तविक धोखेबाजी में कोई बुराई नजर नहीं आ रही है। इन विदेशी कंपनियों के इस खेल का थाह पाना बहुत कठिन नहीं है; ये अपने १०० प्रतिशत विदेशी नवनिर्मित कंपनियों के तीव्र विकास की ओर ध्यान देंगी और उनसे नव परिणीता की तरह व्यवहार करेंगी और पुरानी पत्नी अर्थात् पुरानी कंपनियों की स्थिति बिगड़ने देंगी ताकि बाद में उन्हें अत्यंत कम कीमत पर खरीदा जा सके। उन्हें पता है कि पुरानी पत्नी को कम निर्वाह व्यय देना पड़ेगा। लेकिन इनमें भी सरकार को कोई बुराई नहीं नजर आती है, बल्कि सरकार ने इस पर आश्चर्यजनक चुप्पी साध रखी है और अपनी अज्ञानता का प्रदर्शन कर रही है।

भारतीय व्यावसायिक घरानों का विदेशियों के सामने यह स्वैच्छिक एवं व्यक्तिगत आत्मसमर्पण बड़ा ही दुखदायी है। टाटा समूह द्वारा सिंगापुर एयरलाइंस जैसे एक सर्वथा कनिष्ठ विदेशी कंपनी के सामने घुटने टेकना एवं संयुक्त क्षेत्र में विमानन कंपनी गठन करने का प्रयास करना इस दिशा में किए जाने वाले एक प्रयास को परिलक्षित करता है। यह समझना बड़ा कठिन है कि सिंगापुर एयर लाइंस के पास एक विमानन कंपनी को चलाने का ऐसा कौन-सा नुस्खा है जो टाटा समूह के पास नहीं है। उल्लेखनीय है कि सिंगापुर एयरलाइंस का गठन एयर इंडिया छोड़ चुके कुछ भारतीयों द्वारा ही किया गया है। यह विरोधाभास और भी मुखर हो जाता है अगर हम देखें कि

Scanned with OKEN Scanner

किस तरह एक अदने से उद्यमी ने जेट एयरलाइंस की स्थापना करके टाटा समूह सहित पूरे देश के समक्ष यह उदाहरण प्रस्तुत किया कि बिना विदेशी कंपनियों के सहयोग के भी व्यवसाय किया जा सकता है और सफल भी हुआ जा सकता है। यह इस बात को ज्वलंत उदाहरण है कि किस तरह अपने लोग देशहित का ध्यान रखते हैं और हमें नई ऊँचाइयों पर पहुँचाते हैं जबकि टाटा समूह जैसी बड़ी मछलियाँ विदेशी व्यवसायियों के समक्ष नतमस्तक होकर हार स्वीकार कर लेती हैं।

विदेशी परामर्शदाताओं की चकाचौंध के पीछे रहने वाली चालाक बिल्ली

ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय उद्योगों के इस ह्रास गाथा की पृष्ठभूमि में इन्हीं अंतरराष्ट्रीय कंपनियों की साजिश है। अंतरराष्ट्रीय स्तर की सभी प्रबंध परामर्शदात्री कंपनियों ने भारत में अपनी दुकानें सजा ली हैं एवं जमकर व्यापार कर रही हैं। बड़े-बड़े व्यापारिक घराने बिना किसी संकोच के अपने बही-खाते उनके सामने खोलकर रख रहे हैं। भारतीय स्टेट बैंक, अन्य राष्ट्रीयकृत बैंक एवं सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियाँ जो भारत के व्यापारिक एवं बौद्धिक क्षमताओं की परिरक्षक हैं, उनको अपने पवित्र घरों में सादर आमंत्रित कर रही हैं उनकी बलिवेदी पर निःसंकोच अपना सिर रख रही हैं। हम बाहें फैलाकर इन सुसज्जित एवं विदेशी परंपराओं को प्रशिक्षित इन परामर्शदाताओं का स्वागत कर रहे हैं। ये परामर्शदाता अगर अपने सारे मुवक्किलों को यही सलाह दे रहे हैं कि उन्हें सिमट जाना चाहिए, सिकुड़ जाना चाहिए तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वे तो ऐसा लगता है जैसे एकाग्रचित होकर भारत के सभी व्यवसायियों को एक ही सुझाव बड़ी दृढ़ता से दे रहे हैं कि उन्हें व्यापार के सभी नए क्षेत्रों से बाहर हो जाना चाहिए, उन्हें सिर्फ उन्हीं क्षेत्रों में व्यवसाय करना चाहिए जिनमें उनके दादा-परदादा किया करते थे। वे इसे आधुनिक प्रबंधन की कार्यक्षमता का मूलमंत्र बता रहे हैं। दुर्भाग्यवश, ऐसे खतरनाक सलाह देने वालों का नेतृत्व कुछ तथाकथित 'भूतपूर्व भारतीय' ही कर रहे हैं। इन मौत के सौदागरों द्वारा जुडास का रोल अदा किया जा रहा है और हम लोग इन पर कोई अंकुश नहीं ला पा रहे हैं। भारत के निगमित क्षेत्र ह्रास की गर्त में गिरते जा रहे हैं और मौत के इन सौदागरों की आय में उतरोत्तर वृद्धि होती जा रही है।

अगर हम भारतीय उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र की कुछ वास्तविक सफलताओं की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करें तो इन परामर्शदाताओं की 'मूलभूत कार्यक्षमता' का सिद्धांत धरा का धरा रह जाता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि इस सिद्धांत के पीछे सिर्फ भ्रांति एवं दुर्भावना के सिवा कुछ नहीं है। अगर आज से दस वर्ष पूर्व इन परामर्शदाताओं की मुलाकात विप्रो के श्री प्रेमजी से हुई होती तो उन्हें भी ये यही परामर्श देते कि आप कहाँ हाथ-पाँव मार रहे हैं, अपने पिता द्वारा स्थापित खाद्य तेलों एवं साबुन के धंधे में ही लगे रहिए। ये भारत के लिए और विशेषकर श्री प्रेमजी के लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि वे इन विशेषज्ञों के चक्कर में आने से बच गए और अपनी लगन एवं कौशल के बल पर बड़ी मेहनत से सूचना तकनीकी के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्जा की और आज वे भारत के सर्वाधिक संपन्न व्यक्ति हैं। उनकी कंपनी का सकल उत्पाद ४२५९ करोड़ रुपया का रहा जिसमें से ७८ प्रतिशत यानि ३३२४ करोड़ रुपए उनकी सूचना तकनीकी कंपनी ने अर्जित किए, अगर हम इसे कर पूर्व लाभ (PBT) में बदलकर देखें तो हम पाते हैं कि इसका कुल योग ५८८ करोड़ रुपयों का है जिसमें सूचना तकनीकी अंश का हिस्सा ५२२ करोड़ रुपयों का अर्थात् ८९ प्रतिशत है। अतएव अगर श्री अनिल अंबानी ने हाल ही में कहा कि वे इन अंतरराष्ट्रीय सलाहकारों से बचकर रहना चाहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। अगर आज से २० वर्ष पूर्व ऐसे ही परामर्शदाता श्री धीरूभाई अंबानी से मिले होते तो उन्हें भी शायद यही परामर्श देते कि वो सड़कों पर पॉलीथीन बेचने वाले एक अदना व्यापारी है, उन्हें अपनी सीमाओं की समझ होनी चाहिए और ज्यादा हाथ-पाँव मारने की जगह सड़कों पर फेरी करने का छोटा-मोटा व्यापार ही करते रहना चाहिए। देवियों एवं सज्जनों, तब क्या होता सिवाय इसके कि देश में नए क्षेत्रों में ४०,००० करोड़ रुपयों का निवेश नहीं होता और हम सदा के लिए अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप डीजल आयात करते रहते।

> **अगर आज से दस वर्ष पूर्व इन परामर्शदाताओं की मुलाकात विप्रो के श्री प्रेमजी से हुई होती तो उन्हें भी ये यही परामर्श देते कि आप कहाँ हाथ-पाँव मार रहे हैं, अपने पिता द्वारा स्थापित खाद्य तेलों एवं साबुन के धंधे में ही लगे रहिए। ये भारत के लिए और विशेषकर श्री प्रेमजी के लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि वे इन विशेषज्ञों के चक्कर में आने से बच गए और अपनी लगन एवं कौशल के बल पर बड़ी मेहनत से सूचना तकनीकी के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्जा की और आज वे भारत के सर्वाधिक संपन्न व्यक्ति हैं।**

हम निर्यात के बारे में बातें करना कभी बंद करते, शायद इसीलिए क्योंकि निर्यात के क्षेत्र में अभी हमारा प्रदर्शन बहुत अच्छा नहीं है। मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि हम इससे बेहतर प्रदर्शन कर भी नहीं पाएंगे क्योंकि निर्यात के लिए जो कुछ आवश्यक पूर्वापेक्षाएँ हैं उन्हें हम बड़े योजनाबद्ध ढंग से नष्ट करते जा रहे हैं। यह चीज है नाम या जिसे हम 'ब्राण्ड नेम' कहते हैं। हम देख रहें हैं कि आजकल जितने भी स्थानीय 'ब्राण्ड नेम' है उन्हें बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ खरीदती जा रही हैं और बड़ी निर्दयता से उनका कत्ल करती जा रही हैं। ब्राण्ड नेम का महत्व हम इसी बात से समझ सकते हैं कि मैटल कंपनी जो सुप्रसिद्ध बार्बी गुड़िया का विपणन करती है तथा उसे विश्व में दस डॉलर में बेचती है। इन गुड़ियों का उत्पादन चीन में होता है। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि चीनियों को इसके लिए क्या मूल्य मिलता है? मात्र ३५ सेंट यानि विक्रय मूल्य का मात्र ०.३५ प्रतिशत।

Scanned with OKEN Scanner

इस बीच सरकार ने भारत को एक ब्राण्ड के रूप में बढ़ावा देने के लिए एक कमिटी का गठन किया है और उसने इस कार्य के लिए ५०० करोड़ रुपए खर्च करने की धमकी भी दी है। अब प्रश्न उठता है सरकार द्वारा प्रोत्साहन देने के लिए कितने ब्राण्ड नेम बचे रह जाएंगे और उन बचे ब्राण्ड नेम से हमें क्या मिलेगा? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर अपेक्षित है।

अगर भूमंडलीकरण ही आर्थिक उद्धार का मुख्य रास्ता है तो भारत को भूमंडलीकरण के नाम पर सब्ज बाग क्यों दिखाये जा रहे हैं। भूमंडलीकरण का नुस्खा कहीं यह तो नियत नहीं करता है कि स्थानीय उद्योगों को बर्बाद कर दिया जाए और देश की सारी औद्योगिक संपदा, आर्थिक निर्णय लेने की क्षमता विदेशी कंपनियों के हाथ में चली जाए। वास्तव में सारे शक्तिशाली राष्ट्र जो भूमंडलीकरण का झंडा बुलंद कर रहे हैं एवं वे अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों जो सहर्ष इनकी गुलाम बनी हुई हैं वे बिना इस बात को सोंचे कि स्थानीय उद्योगों पर इसका क्या प्रभाव होगा, भूमंडलीकरण का ईश्वरीय संदेश देने की मनोवृत्ति पर काबू पा सकने में असमर्थ हैं।

अब सरकार एक नए सुखाभास को प्रोत्साहन देने में लगी हुई है। उसका कहना है कि मुद्रास्फीति की दर अभी न्यूनतम है। लेकिन अगर हम थोड़ा ध्यान दें तो हमें पता चल जाएगा, मुद्रास्फीति की जो दरें प्रकाशित की जाती हैं उनसे मुद्रास्फीति की उन सही दरों का पता नहीं चलता है जिनका प्रभाव जनसाधारण पर पड़ता है। चलो ये भी ठीक है, पर हमें अभी भी इस मुख्य प्रश्न का उत्तर देना है कि रोजगार कैसे उपलब्ध कराए जाएँगे। पूरे विश्व में वित्तमंत्रियों की परख दो मुख्य कारकों के आधार पर की जाती हैं, यानि कि बेरोजगारी की दर और मुद्रास्फीति की दर एवं रोजगार में वृद्धि। लेकिन किसी भी जनतंत्र में लोग बहुत लम्बे समय तक बेरोजगारी को बर्दाश्त नहीं करेंगे जिसका परिणाम होगा – सामाजिक अव्यवस्था एवं राजनीतिक विध्वंस। इसके चिह्न हमें रोज आसपास दिखाई दे रहे हैं। दुर्भाग्यवश कोई भी दल इसे गंभीरता से नहीं ले रहा है। यह एक खतरनाक स्थिति है जिसे लम्बे समय तक बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

अब हमें संक्षेप में इस बात पर विचार करना होगा कि भारत को पहले की अपेक्षा आज की परिस्थितियों में आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में ज्यादा भय क्यों है।

'आत्मसम्मान' की आवश्यकता विकास के लिए अनिवार्य

इसका उत्तर हमें उन राजनीतिज्ञों की मनोवृत्ति से मिलेगा जो आजादी के बाद इस देश का शासन चला रहे थे। डॉ. मनमोहन सिंह एवं श्री चिदाम्बरम् की घोषणाओं से यह स्पष्ट हो जाता है। वे तथा उनके समान विचारधारा वाले लोग भारत में एवं विदेशों में यह कहते नहीं थकते कि भारत की दयनीय आर्थिक व्यवस्था की तुलना दक्षिण एशिया के दूसरे अर्थव्यवस्थाओं के साथ की जा सकती है और वे इसके दो मुख्य कारण बताते हैं।

भूमंडलीकरण का नुस्खा कहीं यह तो नियत नहीं करता है कि स्थानीय उद्योगों को बर्बाद कर दिया जाए और देश की सारी औद्योगिक संपदा, आर्थिक निर्णय लेने की क्षमता विदेशी कंपनियों के हाथ में चली जाए। वास्तव में सारे शक्तिशाली राष्ट्र जो भूमंडलीकरण का झंडा बुलंद कर रहे हैं......

(१) विगत ५० वर्षों में भारतीय उद्यमी मुख्यत: राष्ट्र एवं जनसाधारण का शोषण करने में लगे रहे। उन्होंने जानबूझकर अपने उद्योगों का आधुनिकीकरण नहीं किया एवं अक्षमता से निम्नकोटि के उत्पाद बनाते रहे, और

(२) इसलिए भारत को चाहिए कि वो भारतीयों से स्पर्द्धा करने के लिए विदेशियों को उदारशर्तों पर आमंत्रित करे चाहे यह भारतीय उद्योगों के लिए हानिकारक ही क्यों न हो।

यह बड़ी ही मोहक परिकल्पना है, विशेषकर जब इसका प्रचार एवं प्रसार ड मनमोहन सिंह एवं श्री चिदाम्बरम जैसे लो द्वारा किया जाए जो इस सरकार के नीति के मुख्य निर्माता थे।

जिसने भी काँग्रेस शासन के दौरान न उद्योग लगाने एवं पूर्वस्थित उद्योगों के प्रस की चेष्टा की वे ही इन अनाप-शनाप अध्या से परिचित होंगे। क्षमता से अधिक उत्पाद करना एक अपराह्न था। काँग्रेस ने न सि बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया बलि उसने भ्रष्टाचार का भी राष्ट्रीयकरण क दिया। बहुत सी विदेशी कंपनियाँ अपना कुछ भी बचा सकती थीं बचाकर भाग ख हुईं और आज कलकत्ता की समस्या है वहाँ सब तरफ निगमित मलवे बिखरे हुए और वह निगमों का एक वास्तवि कब्रिस्तान-सा बन कर रह गया है।

किसी भी उद्योगपति पर यह आ लगाना कि वह जानबूझ कर अक्षमता क प्रदर्शन कर रहा है एवं सिर्फ लाभ कमाने उद्देश्य से घटिया माल बनाकर बेच रहा निगमित क्षेत्रों के कार्यकलापों के संबंध अनजान बने रहने की पराकाष्ठा है। किसी निगम की कार्यक्षमता एवं उसका उत्पाद सरकार की आर्थिक नीतियों का परिणाम देश की सामाजिक इच्छाओं का परिचायक कोई भी उद्यमी अगर होशोहवास में होगा वह जानबूझकर अक्षम एवं अप्रति योगी ना रहना चाहेगा, क्योंकि ऐसा करने का अ होगा, अपनी कब्र खुद खोदना, चाहे इसमें कु सामयिक (अस्थायी) लाभ ही क्यों न हं

अगर हम कड़े शब्दों का प्रयोग न क तो हम कह सकते हैं कि काँग्रेसी सरकार भारतीय उद्यमियों के साथ ब्रिटि उपनिवेशवादियों से भी बुरा व्यवहार किय यह सच है कि अँग्रेजों ने हमसे कहा कि तुम लोग भारतीय हो अत: तुम सब व्याप या उद्योग चलाने के काबिल नहीं हो। लेकि उन्होंने काँग्रेसियों की तरह यह कभी नह कहा कि चूँकि तुम भारतीय हों इसलिए तु अपने उद्योगों की उन्नति एवं विस्तार करने सक्षम नहीं हो। वास्तव में टाटा एवं बिड़ल समूहों ने अंग्रेजी शासन के दौरान स्वतं भारत की तुलना में अधिक तेजी से उन्नि की थी। जमशेदपुर के अँग्रेज समाहर्त (कमिश्नर) ने जमशेदजी टाटा को इस्पा

Scanned with OKEN Scanner

उद्योग लगाने के लिए बड़े ही उदार शर्तों पर जमीन एवं अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराईं। साथ ही यह भी आश्वासन दिया कि वे श्री टाटा द्वारा उत्पादित सारा इस्पात खरीद लेंगे। स्वतंत्रता के पश्चात् यह भारतीय सरकार थी जिसने उनको विस्तार एवं विकास के अवसर प्रदान करने से इनकार कर दिया। यह बात सारे भारतीय व्यापारिक घरानों के संबंध में लागू होती है।

मुझे याद आ रहा है कि भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री सर अलेक ने दुनिया से क्या कहा था। स्कॉटलैण्ड में स्थित अपने आलीशान एवं आरामदायक घर में बैठकर वे सारे विश्व के लोगों को यह सलाह दिया करते थे कि घाटे में रहने की बजाय मर जाना अच्छा है। डॉ. मनमोहन सिंह एवं श्री चिदम्बरम् सरीखे राजनीतिज्ञ एवं इनकी धारणाओं में विश्वास करने वाले अर्थशास्त्रियों ने भी शायद सर अलेक की इसी अभ्युक्ति को अपना लिया है कि भारतीय उद्योगों को घाटे में चलाने की बजाय उन्हें बर्बाद होने के लिए छोड़ दिया जाए। भारतीयों को अकर्मण्य कहना बड़ा आसान है, लेकिन हमारे सम्मान एवं योग्यता का परिचय देने के लिए यह सिद्ध करके दिखलाना आवश्यक है कि हम अपनी सम्मान एवं योग्यता भूल नहीं गए हैं और इसे पुनः प्राप्त कर सकते हैं एवं अपने राष्ट्राभिमान को पुनः प्राप्त कर सकते हैं एवं अपने नागरिकों का भविष्य सुदृढ़ कर सकते हैं। आत्म-उत्पीड़न की मनोवृत्ति रखकर हमें यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि सिर्फ सरकार ही सकारात्मक एवं प्रगतिशील नीतियों का निर्धारण करेगी जिससे भारतीय उद्योग भारत में उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकेंगे। दुर्भाग्य से अभी तक हमारे राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय हितों की अवहेलना करते हुए मात्र अपने घरों को सजाने में व्यस्त थे। उन्होंने देशहित एवं जनहित के बजाय स्वार्थ को ध्यान में रखकर कार्य किया। उनके नीतियों के कारण भ्रष्टाचार हमारे दैनिक जीवन में भी व्याप्त हो गया। विगत दिनों में कोई भी काँग्रेसी पहले विदेशी सरकार का विरोध करने के लिए जेल जाता था और तब मंत्री बनता था। यह बड़े दुःख की बात है कि अब ठीक इसके विपरीत हो रहा है। अब लोग पहले मंत्री बनते हैं फिर जेल जाते हैं। श्री लालू प्रसाद तो बड़े गर्व से कहा करते हैं कि वो उसी जेल में गए जिसका उन्होंने निर्माण एवं उद्घाटन किया था। सौभाग्य से कहानी में एक छोटा सा मोड़ आया है। देश में एक नई सरकार आयी है जिसमें नए लोग है अर्थात् दृश्य में कुछ परिवर्तन हुआ है। अभी हमें थोड़ा धैर्य रखते हुए नयी सरकार को अवसर देना होगा कि वह तमाम दबावों एवं तनावों को मुक्त होकर देश के विकास के लिए नई नीतियों का कार्यान्वियन कर पाएँ। लेकिन देशहित एवं जनहित में हमें यह स्मरण रखते हुए आगे बढ़ना पड़ेगा कि हमारे पास नई युक्तियों का उपयोग करने एवं उनमें सामन्जस्य स्थापित करने के लिए ज्यादा समय नहीं है। विश्व बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है। हमारे चारों और विनाशलीला के उदाहरण भरे पड़े हैं। हमें इससे बचकर आगे बढ़ने की आवश्यकता है। सोवियत संघ की वर्तमान दशा हमारे आँखों के सामने है, जहाँ अंतरराष्ट्रीय संस्थानों द्वारा अनियंत्रित भूमंडलीकरण का बीज लगा दिया गया था जिसके फलस्वरूप एक ऐसा देश जो निर्धनता एवं बेरोजगारी से अपरिचित था – वहाँ आज बेरोजगारी की दर विश्व में सर्वाधिक है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वहाँ ४० प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं एवं ५० प्रतिशत कर्मचारियों को महीनों वेतन नहीं मिलता है। देवियों एवं सज्जनों हमें चेतावनी मिल चुकी है। अब जरूरत है कि हम अपनी निंद्रा से जागें और सरकार से माँग करें कि वह ऐसी नीतियों का प्रतिपादन करें जो भारत एवं भारतीयों के लिए उपयुक्त हों। हमें सरकार को भी उसकी निंद्रा से जगाना होगा और अनियंत्रित भूमंडलीकरण के खतरों से आगाह करना होगा ताकि वह देश को आर्थिक विनाश के पथ पर अग्रसर होने से रोकने में सक्षम हो सके। हम स्वदेशी आंदोलन के लोग इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध हैं और इसमें आपका पूर्ण समर्थन एवं सहयोग माँगते हैं। यही हमारा उत्तरदायित्व एवं धर्म दोनों है जो हमें आर्थिक एवं आध्यात्मिक मोक्ष की ओर ले जाएगा। ■

खान-पान को विकृत करने लगी है रेल-व्यवस्था

पिज्जा, चिज्ज, पास्ता, चाउमिन, वर्गर, सैंडविच – ये फास्ट फूड हैं, इनके साथ कोल्ड ड्रिंक गटकिए तो मजा ही मजा होगा। आपको मजा हो या न हो पर दवा कंपनियों को और इन सामानों के निर्माता-विक्रेताओं को मजा तो आएगा ही। दिल्ली के स्कूल परिसरों में इन फास्ट फूडों और ड्रिंकों से बच्चों में पैदा हुई बीमारियों के कारण बड़े-बड़े नेक चिकित्सकों ने खुलकर इनकी निंदा की है। साथ ही अखबार भी इस विषय को बार-बार छापता है। फिर भी, भारतीय रेल के रहनुमाओं को क्या सूझा है कि रेलयात्रियों के लिए इन विदेशी खाद्य-सामग्रियों को देश के बाहर स्टेशनों पर बेचने की स्वीकृति दे रहे हैं। इन्हें बेंचने के लिए फूड प्लाजा खोले जा रहे हैं, जिनका संचालक वे कंपनियाँ होंगी। डोमिनी, विम्पी, निरूलाज़ का चयन करने वाले एम०एन० चोपड़ा भारतीय रेलवे आहार एवं पर्यटन निगम के निदेशक को पता नहीं है कि आहार कोई साधारण मामला नहीं है। इससे जुड़े कारीगरों को रोजी-रोटी मिलती है। इस व्यवसाय का लाभ आम आदमी तक जाता है। हमारी खाद्य संस्कृति हमारे स्वास्थ्य और संस्कार के अनुकूल है। उसे नष्ट करने से देशवासियों की उपेक्षा होती है। अपने ही देश में वे पराये होने लगते हैं और तब उत्पन्न होता है – अपराध। चोपड़ा को क्यों नहीं मालूम कि गोरखपुर जानेवाले अधिकतम यात्री भारतीय होते हैं उनका आहार भारतीय होना ही चाहिए। ■

Scanned with OKEN Scanner

स्वदेशी बैट्री कार रेवा पुरस्कृत हुई

बंगलोर की एक स्वदेशी कार कंपनी ने दो सीटों की ऐसी कार बनाई है जो बैट्री से चलती है। २ लाख ४८ हजार की यह कार ४० पैसे प्रति किलोमीटर के खर्च में चलती है। जबकि दूसरी कारें २ रुपए ४० पैसे के खर्च में प्रति किलोमीटर की सेवा देती हैं। इनकी तुलना में स्वदेशी बैट्री कार 'रेवा' की बिक्री अधिक होगी। इस बात की संभावना व्यक्त की जाने लगी है। इस कार को छह वर्ष के शोध के बाद स०कु० मैनी ने पूरी तरह स्वदेशी तकनीक से बनाया है। तकनीकी दिवस ११ मई २००१ को यह 'रीवा' नाम की कार स्वदेशी तकनीक के व्यवसायिक विस्तार के लिए भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित की गयी। यह ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण रहित कम से कम खर्च पर चलनेवाली स्वदेशी कार है। ■

एच-१ बी० वीसा का जानलेवा फंदा

अमरीका की आर्थिक मंदी के दुष्परिणाम भारत से अमरीका पहुँचे सॉफ्टवेयर विशेषज्ञों के सिर पर जो आ गिरे हैं। अमरीका पहुँचने के लिए दी गई एच-१ बी वीसा एक डरावने सपने की तरह बन गई है। वहाँ पहुँचने वाले सॉफ्टवेयर विशेषज्ञ बेरोजगार होकर पैट्रोल पम्पों पर पैट्रोल बेंचने के लिए मजबूर हो रहे हैं, कुछ लोग होटलों में वैरों का काम कर रहे हैं, तो कुछ बच्चों को पढ़ाने और डे-केयर सेन्टरों में लगे हुए हैं।

सिल्कॉन वैली की इंटेल, सिस्को, सन-माइको सिस्टम, एच०पी० इत्यादि बड़ी-बड़ी कंपनियाँ अपने कर्मचारियों की छँटनी कर रही हैं। भारत मूल के अमरीकी उद्यमी कँवल रेखी यह मानते हैं कि भारत से अमरीका पहुँचने वाले सॉफ्टवेयर विशेषज्ञों की दुर्दशा नहीं होती, यदि इन्हें एच-१ बी. वीसा नहीं मिलती, इस वीसा को प्राप्त कर अमरीका में आनेवालों की दशा गुलामी की तरह हो जाती है; न तो वे कंपनियों को छोड़कर जा पाते हैं और न ठीक से रह सकते हैं। उन्हें मिली हुई वीसा कंपनी के माध्यम से ही प्राप्त होती है। कंपनी की अनुमति के बिना ये लोग दूसरी कंपनी में नहीं जा सकते। कंपनियाँ इन्हें दबाव में रखती हैं, इनकी मजबूरी का लाभ लेती हैं, इन्हें रखना और निकाल बाहर करना कंपनियों की इच्छा पर होता है। इस वीसा के अनुसार सॉफ्टवेयर विशेषज्ञ के रूप में ये लोग दूसरी जगह काम नहीं कर सकते। इसलिए एच-१ बी वीसा को इस दुर्दशा के लिए जिम्मेदार माना जा सकता है। ■

बढ़ती बेरोजगारी

किसी प्रतिष्ठान अथवा उद्योग के विनिवेशित या निजीकरण होने का प्रथम दुष्परिणाम वहाँ कार्यरत श्रमिकों को भोगना पड़ता है जिनकी येनकेन प्रकारेण छँटनी की जाती है। केंद्रीय सरकारी सेवा में नयी भर्ती पर सन् 1985 से रोक लगी है। सेवा निवृति के कारण रिक्त हुए स्थान भी भरे नहीं जाते हैं। केंद्र सरकार डाउनसाइजिंग अपनाकर अभी 10 प्रतिशत की और कटौती करेगी। मार्च 1998 में बीमार उद्योगों की संख्या 2,21,536 थी वह बढ़कर मार्च 1999 में 3,06,221 हो गई। अर्थात् केवल एक वर्ष में 84,685 उद्योग बीमार हो गए। यह चिंताजनक बात है।

विदेशी दूध देश के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक

राजस्थान विधानसभा में विदेश से आ रहे कम मूल्यों के दूध के कारण पशुपालन और दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में दिन-दिन बढ़ती अकाल जैसी स्थिति से चिंता गहराई है। पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादन मंत्री हरिसिंह कुम्हेर ने कहा है कि केंद्रीय सरकार की आयात नीति में सुधार से ही इस संकट का समाधान पाया जा सकता है। लेकिन विरोधी दल के नेता भैरवसिंह शेखावत का कहना है कि यह भ्रम फैलाया जा रहा है कि दूध का आयात देश के लिए हानिकारक है। विदेशी सूखा दूध तो १९९४-९५ से ही देश में आ रहा है। अभी केंद्र ने आयात शुल्क ४४.४ प्रतिशत से बढ़ाकर ६६.७ प्रतिशत कर दिया है। राजस्थान सरकार के वित्तमंत्री का तर्क है कि आयात शुल्क बढ़ाने से समस्या का समाधान संभव नहीं होगा। पाम ऑयल में ८५ प्रतिशत आयात शुल्क लगने के बाद भी यह देश के खाद्य तेल के बाजार को मारता चला जा रहा है।

कहना आवश्यक है कि लोकतंत्र का चरित्र तभी उचित ढंग से उभर कर सामने आ सकता है जब किसी जन-प्रतिनिधि के कथन में सरकार के पक्ष में तर्क देने के बदले जनता के हित में तर्क हो। विदेशी दूध से फैलती बेरोजगारी का निदान सरकारी तंत्रों से आयात-निर्यात नीति निर्धारण और शुल्क बाधा बढ़ने से भले न हो, पर यदि दूध से अपने शरीर का पोषण करके विदेशी मानसिकता को नहीं पैदा होने देंगे तो स्वदेशी दूध का उत्पादन कभी नहीं मरेगा। इसके लिए बताना जरूरी है कि विदेशी दूध देश के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, इसमें केवल सच्चाई ही सच्चाई है – कोई भ्रम नहीं। ■

Scanned with OKEN Scanner

जोधपुर में जली विदेशी सामानों की होली

विश्व मजदूर दिवस एक मई के अवसर पर स्वदेशी जागरण मंच द्वारा आयोजित कार्यक्रम से जन जागरण का सराहनीय वातावरण तैयार हुआ। इस अवसर पर जोधपुर (राजस्थान) प्रांत के कार्यकर्त्ताओं ने रैली निकाली और विदेशी सामानों की होली जलाई। आबूरोड जोधपुर में हुए इस आयोजन को भारतीय मजदूर संघ, अरावली मजदूर सभा, वेस्टर्न रेलवे एम्पलाईज़ यूनियन के कार्यकर्त्ता सैद्धांतिक विभेदों को अलग रखकर एक साथ मिलकर इस कार्यक्रम को सफल बनाया। इन दिनों श्रमिक हितों का संघर्ष उनके संबंधित उपक्रमों की सीमा से आगे बढ़कर राष्ट्रीय समस्याओं को केंद्र बनाने लगा है, जिन समस्याओं को पैदा करने में विश्व स्तरीय पूँजीवादी संगठनों का खुला हाथ है। विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाएँ हमारे देश की संप्रभुता को मनमाने ढंग से तोड़-मोड़ रही हैं। ऐसे में भारत के प्रत्येक नागरिक के मन में पहला प्रश्न यह उठ रहा है कि देश और इसकी व्यवस्थाएँ उनके हित के लिए नहीं हों तो क्या ये उन्हें पराधीन बनाने का माध्यम बनकर सिर पर सवार रह सकती हैं?इन्हें राष्ट्रहित में रहना है तो रहेंगी, और यदि पूँजीवादी ताकतों के हाथों खेलती हुई शोषण का हथियार बनेंगी तो नहीं रहेंगी। इस जन जागृति में राष्ट्रभक्ति का भाव नैतिकता पैदा करने वाला साधन बनता जा रहा है। देश में व्याप्त वैचारिक अंतर मिटते जा रहे हैं। इसलिए स्वदेशी जागरण मंच के कार्यक्रम में वामपंथी, समाजवादी और अन्य स्वतंत्र संगठनों का एक साथ आयोजन दिखाई पड़ रहा है। यह प्रसंग सुखद ही नहीं, सशक्त राष्ट्रभाव के उदय का आधार भी है।

आबूरोड, जोधपुर प्रांत में एक मई को आयोजित स्वदेशी जागरण मंच की आमसभा को सम्बोधित करते हुए श्रीमान् भगवती प्रसाद जी, मंच पर बैठे हुए वैस्टर्न रेलवे एम्प्लाइज यूनियन के सचिव श्री प्रकाश मोरवाल, भा.म.संघ के तहसील महामंत्री श्री सच्चिदानंद, हिन्द मजदूर सभा के प्रांतीय उपाध्यक्ष श्री राजन सिंह जी।

आबूरोड जोधपुर में एक मई के स्वदेशी जागरण मंच के अखिल भारतीय विचार प्रमुख डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा के नेतृत्व में हुए कार्यक्रम में जिस प्रकार का उत्साह दिखाई पड़ा, उससे स्पष्ट होता है कि दिन-दिन विश्व व्यापार संगठन और विश्व बैंक के कसते शिकंजे जन विद्रोह का बुलावा देते जा रहे हैं। अमरीकी मंदी को मिटाने के लिए भारत की एक अरब जनता को निचोड़ लेने का प्रयास कहीं भारतवासियों को एकजुट हो खड़ा हो जाने की प्रतिक्रिया न उत्पन्न कर दें।

इस अवसर पर डॉ. भगवती प्रकाश ने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा कि विश्व व्यापार संगठन के विरुद्ध शुरू की गई इस लड़ाई को उत्तरोत्तर मजबूत बनाकर भारत से खदेड़ने की सख्त आवश्यकता है। १९४७ से १९५१ तक हमारा देश लोहा विदेशों से आयात करता था। इसके बाद इस क्षेत्र में हमारा देश आत्मनिर्भर हो गया। इससे दूसरे देश चिंतित हुए। इसी प्रकार के अन्य उद्योगों को भी दूसरे विकासशील देशों को आत्मनिर्भर बनता देख विश्व के २४ पूँजीपति राष्ट्र चिंतित हो गए। इसी के तहत इन सबमें अग्रणी अमरीका ने विकासशील देशों को अपने उत्पादों को बेंचने का बाज़ार बनाने के लिए विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की। आर्थिक बदहाली में फँसे भारत की मजबूरी का लाभ उठाकर विश्व व्यापार संगठन में हस्ताक्षर करवा लिया गया। इस जाल में फँसने के बाद भारत के प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र पर उनकी कब्जेवारी शुरू हो गई। उनका हस्तक्षेप भारत के सभी प्रकार के उद्यमों और कृषि की ओर भी तेज गति से बढ़ता जा रहा है। भारत को पूरी तरह उपभोक्ता बना देने के लिए इनके साजिश विज्ञापन से और आगे बढ़कर संस्कृति, सामाजिक-पारिवारिक संरचना को भी ध्वस्त कर देने वाले मनोरंजन के उत्पाद में भी चल रहा है। डॉ. शर्मा ने कहा कि अमरीका भारत को न केवल परिवार और समाज के स्तर पर बल्कि देश के स्तर भी रूस की तरह टुकड़ों में तोड़ देने के फिराक में है। सभा को सम्बोधित करते हुए भारतीय मजदूर संघ के महामंत्री सच्चिदानंद ने कहा कि विश्व व्यापार संगठन की जड़ों के हमारे देश में जमने से पहले ही उठटवास फेंकने की सख्त जरूरत आ पड़ी है। अरावली मजदूर सभा के महासचिव राजनसिंह ने कहा कि हमारे पास इस विषय में सोचने का तो समय नहीं रहा है, सोचेंगे तब तक सभी उद्योग अधिग्रहण होकर रह जाएँगे। हमारे देश के नेता जिनको हम ही चुनकर भेजते हैं उनको अपनी पार्टी व अपनी कुर्सी के अलावा किसी की चिंता नहीं है। अंत में स्वदेशी जागरण मंच के श्री जगदीश प्रसाद ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का संकल्प दिलाया और इसके बाद विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गई। ■

Scanned with OKEN Scanner

 डाक पंजीयन संख्या डीएल-१३०२७/२००१ आर. एन. आई. पंजीयन संख्या ६४६६८/९...

जलती विदेशी सामानों की होली जैसे माथे पर विजय की रोली

ईश्वर दास महाजन द्वारा स्वदेशी जागरण फाऊंडेशन के लिए कुमार ब्रदर्स प्रिटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ से मुद्रित एवं ६०, नॉर्थ एवेन्यू से प्रका...